

विषय सूची

१—प्रस्तावना	५५	(१)
२—राग	"	३
३—गलोक	"	६०
४—पदों के अर्थ	"	७२
५—सलोकों के अर्थ	"	१२७

रागों का निर्देश

१ रागु सिरी	पुष्ट	१
२ " गड़ी	"	२
३ " आसा	"	२३
४ " सोरठि	"	३२
५ " तिलंग	"	३४
६ " खही	"	३४
७ " गोट	"	३६
८ " रामकली	"	४०
९ " केदारा	"	४४
१० " भैरउ	"	४७
११ " विभास प्रभाती	"	५७
१२ " सलोक	"	६०

(संक्षिप्त)

[इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के बी० ए० के पाठ्यक्रम
में निर्धारित]

रामकुमार वर्मा

साहित्य भवन, लिमिटेड, इलाहाबाद ।

१६४६

प्रवाशक :—
साहित्य-भवन विमिल,
इलाहापाद।

मूला २)

मुद्रक :—
श्रीजगतनारायणलाल,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

प्रकाशकीय

‘संत कवीर’ एक प्रामाणिक ग्रंथ है, जैसा कि विद्वानों को विदित ही है। हिंदी साहित्य में ऐसे ग्रंथ कम हैं जिनमें कवि तथा उसके काव्य से संबंधित विषयों का समुचित निरूपण हो। ‘संत कवीर’ एक ऐसा ही ग्रंथ है। परंतु उसका आकार बड़ा हो जाने के कारण मूल्य भी अधिक हो गया, और विद्यार्थी एवं जन-साधारण उसका उपयोग पूर्ण रूप से न कर सके। उन्हीं लोगों के लिए यह संक्षिप्त संस्करण प्रस्तुत किया जाता है। आशा है, विद्यार्थियों की माँग इस संस्करण से पूर्ण हो सकेगी।

प्रकाशक

प्रस्तावना

कवीर की कविता एक युगांतरकारी रचना है। भक्त कवियों को विनयशीलता और आत्म-भर्त्सना के बीच में वह स्पष्ट कंठ में कही गई धार्मिक और सामाजिक जीवन की पक्षपात-कवीर की कविता रहित विवेचना है। उस कविता में समय की श्रांघ-परंपराओं को छिन्नमूल करने की शक्ति है और जीवन में जागृति लाने की अपूर्व क्षमता। हिंदी साहित्य के धार्मिक काल के नेता के रूप में कवीर ने जितने साहस से परंपरागत हिंदू धर्म के कर्मकांड से संघर्ष लिया उतने ही साहस से उन्होंने भारत में जड़ पकड़ने वाली इस्लाम की नवीन संप्रदायिक भावना से लोहा लिया। कवीर ने सफलतापूर्वक दोनों धर्मों की 'अधार्मिकता' पर कुठाराघात किया और एक नये संप्रदाय का युत्रपात किया जो 'संतमत' के नाम से प्रख्यात हुआ। इस संप्रदाय ने शास्त्रीय जटिलताओं से सुलभा कर धर्म की सरल और जीवनमय बना दिया जिससे साधारण जनता भी उससे अंतः प्रेरणाएँ ले सके। यही कारण है कि इस संतमत में समाज के साधारण और निम्न व्यक्ति भी सम्मिलित हो सके जिनकी पहुँच शास्त्रीय ज्ञान तक नहीं थी। कवीर ने साधारण जीवन के रूपकों द्वारा अथवा अनुभूतिपूर्ण सरस चित्रों के सहारे ही आत्मा, परमात्मा और संसार की समस्याओं को सुलभाया। धर्म-प्रचार की इस शैली ने धर्म को व्यक्तिगत अनुभव का एक अंग बना दिया और समाज ने धर्म के वास्तविक रूप को पहिचान लिया।

जनता का यह गतिशील सहयोग कवीर की रचनाओं के पक्ष में अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। कवीर संत पहले थे, कवि बाद में। उन्होंने

कविता का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए कंठ मुतारित नहीं किया,

उन्होंने धर्म के व्यापक रूप को मुदोच बनाने के कविता का रूप लिए काव्य नियंत्रित किया। अतः कवीर में भास्मिक दृष्टिकोण प्रधान है काव्यगत दृष्टिकोण गीण। यह

दूसरी बात है कि जीवन में 'गहरी पेट' होने के कारण उनकी कविता में जीवन काँति सहस्रमुखी हो उठी। उससे धर्म प्राणमय होकर अनेक चित्रों में साकार हो गया। संत कवीर कवि कवीर ही गण, यज्ञि संत ने न तो भाषा के रूप को सँवारा और न पिंगल की मात्रिक और वर्षिक शैली का अनावश्यक अनुकरण किया। गेय पदों के रूप में उन्होंने कविता कही और जनता ने उसमें अपना कंठ मिला दिया। जनवाणी के रूप में ये पद समाज में संचरित हो गए। साथ ही साथ कवीर के नाम से जनता ने नवीन पदों की रचना करने में कवीर के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति समझी। इस प्रकार कवीर की वाणी में ऐसे-ऐसे पद प्रक्षिप्त किए गए जिनमें न तो कवीर की आत्मा है और न उसका ओज। कवीर ने 'पुस्तक-ज्ञान' का तिरस्कार किया था अतः स्वयं उन्होंने किसी विशिष्ट ग्रंथ की रचना नहीं की। वे तो जनता में उपदेश देते थे और अपने पदों को उपदेश का माध्यम बनाते थे। फलतः पदों में न तो कोई कमवद्धता है और न कोई शृंखला। कविता का रूप मुक्कक होने के कारण संत संप्रदाय के भक्तों द्वारा मनमाना वडाया-घटाया गया है। अतः कवीर के नाम से प्रसिद्ध रचना में कवीर की वास्तविक रचना पाना बहुत कठिन हो गया है। कवीर के नाम से पाई जाने वाली रचना अधिकांशतः कवीर के प्रथम शिष्य धर्मदास द्वारा ही लिखी गई है। बाद में तो कवीर-पंथी साधुओं ने अपनी ओर से बहुत-सी रचना की और संत कवीर में अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा होने के कारण उसे कवीर के नाम से ही प्रचारित किया। कवीर के प्रति इस श्रद्धा और भक्ति ने कवीर की कविता का वास्तविक रूप ही हमसे

छीन लिया और आज कवीर के नाम से प्रचलित रचना को हम संदिग्ध दृष्टि से देखने लगे हैं।

इस समय कवीर की कविता के बहुत से संग्रह कविता के संग्रह प्रकाशित हैं। प्रायः सभी में पाठ-मैद हैं। इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित संस्करण अधिक प्रसिद्ध कहे जा सकते हैं :—

१. संतवानी संग्रह (वेलवेडियर प्रेस) प्रकाशित सन् १६०५,
वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

२. बीजकमूल (कवीरचौरा, वनारस) प्रकाशित सन् १६३१,
महावीर प्रसाद, नैशनल प्रेस, वनारस कैट।

३. सत्य कवीर की साखी (श्री युगलानंद कवीरपंथी भारतपथिक)
प्रकाशित सन् १६२०, श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई।

४. सद्गुरु कवीर साहब का साखी ग्रंथ (कवीर धर्मवर्धक
कार्यालय, सीयावाग, बड़ौदा) प्रकाशित सन् १६३५, महंत श्री
बालकदासजी; धर्मवर्धक कार्यालय, सीयावाग, बड़ौदा।

५. बीजक श्री कवीर साहब (साधु पूरनदास जी) प्रकाशित
सन् १६०५, बाबू मुरलीधर, काली स्थान, करनेलगंज, इलाहाबाद।

६. कवीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) प्रकाशित
सन् १६२८, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

उपर्युक्त संस्करणों में बीजक और साखी ग्रंथ अलग-अलग अथवा
मिले हुए ग्रंथ हैं जिनसे कवीर की कविता का ज्ञान जनता में सम्यक् रूप

संग्रहों की प्रामाणिकता संतवानी संग्रह	से अवश्य हो गया किंतु इन सभी संस्करणों की प्रामाणिकता चित्य है। वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित संतवानी-संग्रह का प्रचार सार्वाधिक है किंतु यह प्रति संतों और महात्माओं द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर ही संकलित की गई है। उसका रूप साधु-संतों के गाये हुए
----------------------------------------------	-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------

पदों और गीतों से ही निर्मित है, किसी प्राचीन इस्तलिखित प्रति का आधार उसके संकलन में नहीं लिया गया और यदि लिया भी गया है तो उसका कोई संकेत नहीं दिया गया।

कबीरचौरा ने जो वीजक मूल की प्रति प्रकाशित की है, उसका पाठ अनेक प्रतियों के आधार पर अवश्य है किंतु वे प्रतियों केवल

‘साक्षी रूप’ से ही उपयोग में लाई गई है।^१ इस वीजक मूल प्रति का मूल आधार कबीरचौरा का प्राचीन प्रचलित पाठ है। किंतु यह प्राचीन पाठ किस प्रति के आधार पर है, इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया।

श्री युगलानंद कबीरपंथी भारतपथिक की प्रति प्रामाणिक प्रतियों की सहायता से भी प्रामाणिक नहीं हो सकी। श्री युगलानंद ने अपनी प्रति को अनेक प्रतियों से शुद्ध भी किया है। “जिन पुस्तकों से यह शुद्ध हुई है उनमें से एक प्रति तो रसीदपुर शिवपुर निवासी श्रीमान् वद्धशी गोपाललाल जी पूर्व श्रमात्य शिवहर राज्य के पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी जो संवत् १६०० की लिखी हुई है। दूसरी प्रति नागपुर सत्य कबीर की इन्द्रभान जी निवासी श्री मैरवदीन तिवारी जी ने साखी कृपाकर भेजी थी जिसमें अनेक संतों की वाणी के साथ-साथ यह साखी भी है और संवत् १८४२ की लिखी है और तीसरी प्रति मखदूमपुर जिला गया निवासी

^१ वीजक मूल के संपादक साधु लखनदास और साधु रामफलदास लिखते हैं :—

अपने मत तथा इस ग्रंथ का संशोधन ग्यारह ग्रंथों से किया है जिसमें छः टीका-टिप्पणी साथ हैं और पाँच हाथ की लिखी पोथी है परंतु इन सब ग्रंथों को साक्षी रूप में रखा था, केवल स्थान कबीरचौरा काशी के पुराने और प्रचलित पाठ पर विशेष ध्यान दिया गया है।

श्री नेतालालराम जी की भेजी हुई है, जिसमें यद्यपि सन् संवत् नहीं लिखा है परंतु पुस्तक के देखने से जान पड़ता है कि यह भी प्राचीन ही लिखी हुई है। इसके अतिरिक्त स्वामी श्री युगलानंद जी के पास और भी अनेक प्रतियाँ थीं जिसमें उन्होंने इस पुस्तक को शुद्ध कर लिया है।” (श्री खेमराज श्रीकृष्णदास) यदि श्री युगलानंद जी अपनी प्रति में संवत् १६०० की प्रतिवाली सामग्री रखते तो उनकी प्रति अवश्व प्रामाणिक होती किंतु उन्होंने किया यह है कि ‘कवीर साहब की जितनी साखियाँ जगत में प्रसिद्ध हैं सब इसी पुस्तक में’ संकलित कर ली हैं और उन्हें संवत् १६०० की प्रति की साखियों से यथास्थान शुद्ध किया है। इससे इस पुस्तक की वहुत-सी सामग्री संवत् १६०० की प्रति से अतिरिक्त है और उसकी प्रामाणिकता के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनकी प्रति में प्रामाणिक और अप्रामाणिक सामग्री एक साथ मिल गई है।

कवीर धर्मवर्धक कार्यालय सीयावाग वड़ोदा का साखी ग्रंथ एक आलोचनात्मक अवतरणिका और अनुक्रमणिका के साथ है और उसमें कवीर की सभी साखियाँ संग्रहीत हैं किंतु साखी ग्रंथ पुस्तक में किसी भी स्थान पर नहीं लिखा है कि साखियों के पाठ का आधार क्या है। अतः इस पाठ की प्रामाणिकता के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

साधु पूरनदास जी का वीजक ग्रंथ वहुत प्रसिद्ध कहा जाता है। संवत् १८६४ में उन्होंने उसकी ‘त्रिज्या’ लिखी। यह त्रिज्या “पहली बार बाबा देवीप्रसाद” और सेवादास और मिस्ट्री वालगोविंद की सहायता से मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा लखनऊ के छापेखाने में छापी गई थी। उसके बहुत अशुद्ध हो जाने के कारण हर जगह के साधु लोग बहुत शिकायत

किया करते थे ।………सब साधु-महात्माओं की दया से एक प्रति हस्तलिखित वीजक त्रिज्या सहित बुरहानपुर की लिखी हुई, साधु काशीदास जी साहब से हमको मिली । उस ग्रंथ की शुद्धता को देखकर हमारा मन बहुत प्रसन्न हुआ, और साधु काशीदासजी साहब ने इस त्रिज्या के शोधने में पूर्ण परिश्रम उठाकर सहायता दी है ।” (वावू मुरलीधर) यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि साधु काशीदास जी साहब की जो प्रति थी वह किस संवत् की थी और उसका आधार क्या था ? यो वीजक की कवीर के विचारों का पुराना संग्रह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

प्रामाणिकता के दृष्टिकोण को सामने रखते हुये काशी नागरी प्रचारिणी सभा से रायवहादुर श्री (अब डाक्टर) श्यामसुन्दरदास जी ने कवीर ग्रंथावली का प्रकाशन किया । यह संस्करण कवीर ग्रंथावली दो प्राचीन प्रतियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है । एक प्रति संवत् १५६१ की लिखी हुई है और दूसरी संवत् १८८१ की । “दोनों प्रतियाँ सुन्दर अक्षरों में लिखी हैं और पूर्णतया सुरक्षित हैं । इन दोनों प्रतियों के देखने पर यह प्रकट हुआ कि इस समय कवीरदास जी के नाम से जितने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं उनका कदाचित् दशमांश भी इन दोनों प्रतियों में नहीं है । यद्यपि इन दोनों प्रतियों के लिपिकाल में ३२० वर्ष का अंतर है परं फिर भी दोनों में पाठ-भेद बहुत ही कम है । संवत् १८८१ की प्रति में संवत् १५६१ वाली प्रति की अपेक्षा केवल १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं ।” नागरी प्रचारिणी सभा के इस संस्करण का मूल आधार संवत् १५६१ श्री लिखी हस्तलिखित प्रति है जिसके प्रथम और अंतिम पृष्ठों के चित्र इस संस्करण के साथ प्रकाशित हैं । यदि इस प्रति को वारीकी से देखा जाय तो इसकी प्रामाणिकता के संबंध में संदेह बना ही रहता है । संदेह यह पहला कारण तो यह है कि इस हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका ग्रंथ

में लिखे गए अक्षरों से भिन्न और भोटे अक्षरों में लिखी गई है। समस्त ग्रंथ और पुष्पिका लिखने में एक ही हाय नहीं मालूम होता। प्रति का अंतिम अंश यह है:—

इतिश्रीकवीरजीकीवाणीसंपूरणसमाप्तः ॥ सापी ॥ ८१० ॥ अंग ॥ ६६ ॥
पद ४०२ ॥ राग १५ ॥

पुष्पिका यह है:— संपूर्णसंवत् १५६१ किष्पकृतावाणारसमध्ययेम-
चंद पठनाथ् मलुकदासवाचविचाजांसूश्री रामरामद्याद्रसि पूस्तकंद्रष्टवाता
इसंलितंमया यदिशुद्दंतोवाममदोशोनदियतां ॥

प्रति के अंतिम अंश का 'संपूरण' पुष्पिका में 'संपूर्ण', हो गया है। इस संबंध में श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं, "एक बार 'इतिश्री कवीर जी' की वाणी संपूरण समाप्तः ॥ ८.....' इत्यादि लिखकर फिर से अपेक्षाकृत मोटी लिखावट ने 'संपूर्ण संवत् १५६१' इत्यादि लिखना क्या संदेहास्पद नहीं है? पहली बार का 'संपूरण' और दूसरी बार का 'संपूर्ण' काफ़ी संकेतपूर्ण हैं। एक ही शब्द के ये दो रूप—हिज्जे और आकार-प्रकार में स्पष्ट ही बता रहे हैं कि ये एक हाय के लिखे नहीं हैं! ऐसा जान पड़ता है कि अंतिम डेढ़ पंक्तियाँ किसी बुद्धिमान की कृति हैं।' इस प्रकार इस प्रति की पुष्पिका का संपूर्ण ग्रंथ के बाद की लिखी हुई जान पड़ती है। पुष्पिका में एक बात और ध्यान देने योग्य है। मूल में 'ल', 'क', 'श्री' जिस आकार-प्रकार में लिखे गए हैं उस आकार-प्रकार में वे पुष्पिका में नहीं लिखे गए। फिर मूल प्रति में 'य', 'और 'व' के नीचे बिंदु रखके गए हैं जो पुष्पिकां के 'य' और 'व' के नीचे नहीं हैं। 'दोप' के हिज्जे के अंतर ने तो यह स्पष्ट ही निश्चित कर दिया है कि पुष्पिका और मूल एक ही व्यक्ति द्वारा नहीं लिखे गए। मूल के अंतिम पृष्ठ की चौथों पंक्ति में है:—'पीया दूध रुध्र है आया मुर्द गाह तव दोप लगाया।' यही 'दोप' पुष्पिका में 'दोशो न दियतां'

रागु गौड़ी के वारहवें पद की दो पंक्तियाँ लीजिए :—

धी मंदलिया वैलर वावी, कलवा ताल वजावै ।

पहरि चोल नांगा दह नाचै, भैसा निरति करावै ॥

यहाँ 'वैलर वावी' और 'चोल नांगा दह नाचै' का कोई अर्थ नहीं होता । वास्तव में 'वैलर वावी' के स्थान पर होना चाहिए 'वैल रवावी' और 'चोल नांगा दह नाचै' के स्थान पर 'चोलना गादह नाचै' । इस प्रकार के अशुद्ध पाठ कवीर ग्रंथावली में भरे पड़े हैं । अतः कवीर की कविता का प्रामाणिक पाठ इस संस्करण द्वारा भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका ।

कवीर का प्रामाणिक पाठ जानने के संबंध में हमारे पास कोई विशेष सामग्री नहीं है । कवीर ने पुस्तक-ज्ञान का सदैव तिरस्कार किया है । अतः इसमें संदेह है कि उन्होंने किसी ग्रंथ की रचना की होगी । उन्होंने जीवन और संसार पर चित्तन कर उपदेश दिए और शिष्यों ने उन्हें स्मरण रखकर वाद में पुस्तक रूप से प्रस्तुत किए । कवीर ने पुस्तकों से अध्ययन तो नहीं किया किंतु उन्होंने अपना ज्ञान सत्संग और स्वानुभूति से अवश्य अंजित किया । वे साधारणतः पढ़े-लिखे हो सकते हैं क्योंकि अक्षर-ज्ञान से संबंध रखने वाली 'वावन अखरी' उन्हाँने लिखी है । यह कहा जा सकता है कि 'पंद्रह तिथि' 'सात वार' और 'वावन अखरी' जोगेसुरीवानी की परंपरा हो सकती है और नाथपंथ से उसका विशेष प्रचार भी हो सकता है किंतु एक बात है । कवीर की 'पंद्रह धिती' 'सात वार' के समानांतर गोरखवानी में 'पंद्रह तिथि' और 'सप्तवार' की रचना तो हमें मिलती है किंतु 'वावन अखरी' की रचना प्राप्त नहीं होती । 'वावन अखरी' की परंपरा की भी संभावना हो सकती है क्योंकि जायसी जैसे सूफ़ी सिद्धांत से प्रभावित कवि ने 'अखरावट' की रचना कर वर्णमाला के वावन अक्षरों के संचेत लिखे हैं । फिर भी 'वावन अखरी' से कवीर में अक्षर-ज्ञान की संभावना हम

गोरखनाथ से कभी कवीर का संवाद हुआ ही न होगा क्योंकि ये सब कवीर के पूर्ववर्ती हैं। कवीरपंथी साधुओं ने कवीर साहब का महत्व बढ़ाने के लिए उनकी प्रशंसा में ये ग्रंथ लिख दिये होंगे। नामरी प्रचारणी सभा की खोज रिपोर्ट में कुछ ही ग्रंथों का लिपिकाल दिया गया है। इसके अनुसार सबसे पुराने हस्तलिखित ग्रंथ निम्नलिखित है :—

- | | |
|--------------------|-------------------|
| १ कवीर जी के पद | ३ कवीर जी की साखी |
| २ कवीर जी की रमैनी | ४ कवीर जी कौ कृत |

इन ग्रंथों का लिपिकाल विक्रम संवत् १६४६ दिया गया है और रचनाकाल संवत् १६००। कवीर १६०० तक जीवित नहीं रहे यह जोधपुर राज्य निर्विवाद है। अतः ये ग्रंथ उनके द्वारा नहीं लिखे पुस्तकालय के ग्रंथ जा सकते; उनके शिष्यों द्वारा इनकी रचना कही जा सकती है। ये सभी ग्रंथ जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय में सुरक्षित करवे गए हैं। मैंने जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय से कवीर संबंधी सभी ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ मँगवाईं। वहाँ से मुझे द हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं जो निम्नलिखित हैं :—

१ कवीर गोरप गुष्ट	(पञ्च-संख्या ७)
२ कवीर जी की मात्रा	(„ १)
३ कवीर परिचय	(„ १३)
४ कवीर रैदास संवाद	(„ २)
५ कवीर साखी	(„ ३६)
६ कवीर धम्माल	(„ ११)
७ कवीर पद	(„ २४)
८ कवीर साखी	(„ ६)

इन प्रतियों में खोज रिपोर्ट द्वारा निर्दिष्ट 'कवीर जी कौ कृत' और 'कवीर जी की रमैनी' नहीं है। 'कवीर जी की साखी' और 'कवीर जी

के पद' अवश्य है। किंतु जोधपुर राज्य-पुस्तकालय से प्राप्त हुए एक ग्रंथ को छोड़कर किसी भी ग्रंथ में लिपिकाल नहीं दिया गया है। केवल 'कवीर गोरप गुण' का काल संवत् १७६५ दिया गया है। अतः खोज रिपोर्ट का प्रमाण संदिग्ध और अविश्वसनीय है।

मैंने कवीर संबंधी अनेक हस्तलिखित ग्रंथ देखे हैं किंतु उनके शुद्ध रूप के संबंध में मुझे विश्वास कम हुआ है। इसके अनेक कारण हैं :—

१. कवीर-पंथ के अनुयायी प्रमुखतः समाज की निम्न श्रेणी के अनेक हस्तलिखित होने के कारण साहित्य और भाषा के ज्ञान में अत्यंत साधारण होगे। अतः हस्तलिपि-लेखन में उनसे बहुत-सी भूलें हो सकती हैं।

२. कवीर का काव्य अधिकतर मौखिक ही रहा। वह गुरु के मुख में अधिक प्रभावशाली है, पुस्तक में नहीं। अतः कवीरपंथ में पुस्तक का महत्व गुरु से अपेक्षाकृत कम है। सद्गुरु का उपदेश 'कर्ण विभूपरण' के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, पुस्तक-पाठ से नहीं। इसलिए पुस्तक-पाठ सदैव अप्रधान समझा गया है। जब गुरु का उपदेश प्रधान हो गया तब परंपरागत पाठ में परिवर्तन होने की आशंका यथेष्ट हो जाती है। प्रत्येक गुरु उस पाठ में अपनी स्मरण-शक्ति के अनुसार कम या अधिक परिवर्तन कर सकता है। फिर गुरु हो जाने पर तो अपनी ओर से घटाने और बढ़ाने का अधिकार भी वह रख सकता है। इस प्रकार प्रथम पाठ से यह उपदेश कितना दूर होगा, यह अनुमान किया जा सकता है। फिर युगों के प्रवाह में सिद्धान्तों की रूप-रेखा में भी भिन्नता आ सकती है। नये सिद्धान्तों के बीच में पड़ कर कविता की दिशा दूसरी ही हो जाती है।

३. कवीर के सिद्धांत जनता में व्यापक रूप से प्रचलित थे। उनके विचार भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों में प्रचारित होते

रहे। अतः प्रांतीयता के दृष्टिकोण से अथवा अशिन्ति जनता के संपर्क में आने से उनके पदों और साखियों में बहुत भिन्नता आ सकती है। कबीर ग्रंथावली का पंजाबीपन इस बात का प्रमाण है। भापा और भावों को इस भिन्नता से बचाने के लिए कभी कोई संघ और संगीति की आयोजना नहीं हुई। न कभी कोई ऐसा प्रयत्न हुआ जिससे भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रचलित वाणी को एक रूप दे दिया जाता जैसा कि वौद्ध या जैन धर्मों में हुआ करता था। योग्य और मान्य आचार्यों के विचार-विनिमय अथवा परामर्श से जो काव्य में एकरूपता आती वह प्रक्षिप्त अथवा भूले हुए सिद्धांतों को व्यवस्थित कर सकती। किंतु इस प्रकार के प्रयत्न कबीरपंथ में कभी नहीं हुए।

४. हस्तलिखित ग्रंथों में जो पंक्तियाँ लिखी जाती हैं वे एक पूरी लकीर की लंबाई में कभी पूर्ण होती हैं, कभी अपूर्ण। यहाँ तक कि शब्द भी टूट जाते हैं। प्रतिलिप करने में ऐसे स्थलों पर अनेक भूलें हो जाती हैं। पंक्तियों में शब्द भी आपस में जुड़े रहते हैं और वे शब्द स्पष्टतः आँखों के सामने न रहने से कभी-कभी प्रतिलिपियों गे छूट जाते हैं। ऐसे प्रसंग अनेक बार हस्तलिखित प्रतियों में पाये जाते हैं। इस संबंध में कबीर ग्रंथावली से एक उदाहरण दिया जा चुका है। एक पूरा शब्द जब पंक्ति के अंत में टूट जाता है तब कभी-कभी उसे दूसरी पंक्ति जोड़ने से अंति हो जाती है। विराम चिह्नों के अभाव में यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

५. कहीं कहीं अशुद्ध शब्द या चरण के नीचे विंदु रखकर उसे छोड़ने का संकेत होता है या उसपर हरताल लगा दी जाती है किंतु प्रतिलिपिकार उस विंदु को न समझकर अथवा हरताल के हल्के पड़ जाने से अशुद्ध शब्द या चरण की प्रतिलिपि कर ही लेता है। वह हाशिया में दिये हुए छोड़े गए शब्दों को पंक्तियों में जोड़ भी लेता है।

६. कहीं-पत्र संख्या न ढालने से पदों के कम में भी बहुत अङ्गचन

पढ़ जाती है। पृष्ठों के बजाय पत्रों पर ही संख्या लिखी जाती है। अतः एक पत्र की संख्या मिट जाने पर अपने संदर्भ की सूचना नहीं दे सकता जब तक कि उसमें कोई दूटा हुआ शब्द या चरण न हो। इस कठिनाई से वह पत्र ग्रंथ में कहाँ जोड़ा जाय यह एक प्रश्न हो जाता है यदि दो-तीन पत्रों के संबंध में ऐसी कठिनाई हो गई तो सारा हस्तलिखित ग्रंथ ही कम-विहीन हो जाता है। उदाहरण के लिए नामरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कवीर ग्रंथावली में 'गोकलनाइक वीडुला मेरो मन लागौ तोहि रे' (पद ५) के बाद 'अब मैं पाइवौ रे ब्रह्म गियान' (पद ६) है किंतु जोधपुर-राज्य पुस्तकालय की 'अथ कवीर जी के पद' में ५ के बाद 'मन रे मन ही उलट समाना' पद है जो कवीर ग्रंथावली में ८ वाँ पद है। अनुमान होता है कि जिस मूल प्रति से जोधपुर-राज्य पुस्तकालय की प्रतिलिपि बनाई गई होगी उसका एक पुत्र खो गया होगा।

३. कवीर के काव्य की प्रतियों स्वयं कवि द्वारा अथवा किसी संस्था द्वारा न लिखी जाकर भिन्न-भिन्न स्थानों में तथा भिन्न-भिन्न युगों में की गई है। छपाई के अभाव में प्रामाणिक प्रतियों की प्रतिलिपियों में भी अनेक अशुद्धियाँ आ जाती हैं। किसी प्रति की जितनी ही अधिक प्रतिलिपियाँ होंगी उसमें अशुद्धियों का अनुपात उतना ही अधिक बढ़ता जावेगा। फिर वड़ी रचना होने के कारण एक ही प्रति की प्रतिलिपियों में अनेक व्यक्तियों का हाथ हो सकता है। वहाँ भूलें और भी अधिक हो सकती हैं। समानता का अभाव तो हो ही जायगा। फिर यदि लिपिकार अहंभाव से युक्त होगा तो वह पोठ को अपनी ओर से शुद्ध भी कर लेगा।

४. भाषा-विज्ञान के अनुसार अनेक पीढ़ियों में उच्चारण-मेद हो जाना स्वाभाविक है। अतः जब तक मूल प्रति या उससे की गई प्रामाणिक प्रति न मिले तब तक पाठ के संबंध में पूर्ण आश्वस्त होना

अत्यंत कठिन है।

६. किसी रचना के भिन्न-भिन्न पाठों में ठीक पाठ चुनने का कार्य यदि किसी गुरु के द्वारा किया भी गया तो उसके चुनाव की उपयुक्तता भी संदिग्ध ही है। और यदि चुना हुआ पाठ मूल पाठ से भिन्न है तो फिर मूल पाठ आगे चलकर सदैव के लिए ही लोप हो जाता है।

इस प्रकार प्रतिलिपिकारों की अज्ञानता, समय का अत्याचार, गुरुओं की अहम्मन्यता, छपाई के अभाव में इस्तलेखन की कठिनाइयाँ, कविता के भिन्न-भिन्न प्रांतों में व्यापक और मौखिक प्रचार ने कवीर के काव्य को मूल से कितना विकृत किया होगा इसका अनुमान हम सरलता से कर सकते हैं। जब तक किसी प्राचीनतम प्रति का अन्य समकालीन प्रतियों से मिलान कर शुद्ध पाठ प्रस्तुत न किया जाय तब तक हम कवीर के शुद्ध पाठ के संबंध में संतुष्ट नहीं हो सकते।

उपर्युक्त समीक्षा को दृष्टि में रखते हुए कवीर की रचना का प्रामाणिक पाठ प्राप्त करना कठिन है। मेरे सामने अधिक से अधिक विश्वसनीय

पाठ श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब का रचना का ज्ञान होता है।

श्री गुरु ग्रंथ साहब श्री ग्रंथ साहब का संकलन पाँचवें गुरु श्री अर्जुन-देव ने सन् १६०४ (संवत् १६६१) में किया था।

सन् १६०४ का यह पाठ अत्यंत प्रामाणिक है। इसका कारण यह है कि आदि श्री गुरु ग्रंथ सिक्खों का धार्मिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ सिक्खों द्वारा 'देव स्वरूप' पूज्य हीने के कारण अपने रूप में अज्ञुण है और इसके पाठ को स्पर्श करने का साहस किसी को नहीं हो सका। यहाँ तक कि एक-एक मात्रा को मंत्रशक्ति से युक्त समझ कर उसे पूर्ववत् ही लिखने और छापने का क्रम चला आया है। यह ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है। जब गुरुमुखी लिपि से यह देवनागरी लिपि में छापा गया तब 'शब्द के स्थान शब्द' रूप में ही इसका रूपान्तर हुआ क्योंकि सिक्ख धर्म के अनुयायियों में विश्वास है कि 'महान् पुरुषों की तरफ से जो

अक्षरों के जोड़-तोड़ मंत्र रूप दिव्य वाणी में हुआ करते हैं, उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ति होती है जिसको सर्वसाधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परंतु उनके पठन-गाठन में यथातथ्य उच्चारण से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरु ग्रंथ साहित् जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिंदी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार के अनुसार ही यह हिंदी बोड़ गुरमुखी लिखत अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरमुखी अक्षरों के स्थान हिंदी (देवनागरी) अक्षर हो किये गये हैं।^१ (प्रकाशक की विनय पृष्ठ २, भाई मोहनसिंह वैद्य)।^१ इस प्रकार आदि श्री गुरु ग्रंथ साहित् जी का जो पाठ सन् १०६४ में गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा प्रस्तुत किया गया था, वह आज भी वर्तमान है। किसी पंडित द्वारा वह नहीं ‘शोधा’ गया। अतः इस पाठ को हम अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ मान सकते हैं। किर गुरमुखी जिसमें श्री गुरुग्रंथ साहित् लिखा गया है, देवनागरी से अपेक्षाकृत कम प्रचलित है। अतः देवनागरी लिपि में प्रतिलिपिकारों से जितनी अशुद्धियों की संभावना हो सकती है उतनी गुरमुखी लिपि की प्रतिलिपियों में नहीं।

गुरमुखी लिपि में लिखे जाने पर भी कवीर के काव्य का व्याकरण पूर्वी हिंदी का रूप ही लिए हुए है। उसमें स्थान-स्थान पर पंजाबी प्रभाव अवश्य दृष्टिगत होता है किंतु प्रधान रूप से उसमें व्याकरण हमें पूर्वी हिंदी (अवधी) व्याकरण के रूप ही मिलते हैं। संस्कृत से आए हुए संज्ञा-प्रातिपदिकों (stems) के स्वरांत यद्यपि अवधी और पंजाबी में व्यंजनांत हो गए हैं तथापि पंजाबी में जो संयुक्त व्यंजन द्वित्व हो जाते हैं, वे अवधी में नहीं हैं।

^१ आदि श्री गुरु ग्रंथ साहेब जी—मोहनसिंह वैद्य तरनतारन (अमृतसर) १६२७।

फिर भी कुछ पंजाबी प्रभाव उनकी भाषा पर दृष्टिगत होते ही हैं:—

किंतु ये सब प्रभाव कवीर की कविता पर गौणरूप से पड़े हैं उसी प्रकार जैसे कि खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रभाव। प्रमुखतः कवीर की कविता पूर्वी हिंदी के रूप लिए हुए हैं और यह, संत कवीर का देख कर आश्चर्य होता है कि पंजाबी भाषा की प्रस्तुत संस्करण धर्म पुस्तक श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब में कवीर की कविता का पंजाबी संस्कार नहीं हुआ, वह अपने स्वाभाविक रूप में वर्तमान है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु अंगद जी ने तत्कालीन अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ संग्रह किया होगा और उसको उसी रूप में अपनी नवीन लिपि (जो लंडा लिपि का परिष्करण कर श्री गुरु ग्रंथ साहब में नियोजित की थी) में लिख दिया। यही बात हमें नामदेव जी के पदों में मिलती है जो श्री गुरु ग्रंथ साहब में हैं। नामदेव की भाषा मराठी है और गुरु ग्रंथ साहब में नामदेव की वाणी मराठी रूप ही में सुरक्षित है। अतः हम श्री गुरु ग्रंथ साहब में आए हुए कवीर के कविता-पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक मानते हैं। खेद की बात है कि अभी तक हिंदी विद्वानों का ध्यान गुरु ग्रंथ साहब में कवीर के काव्य की ओर आकर्षित नहीं हुआ। संभवतः कारण यह हो कि उक्त ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है और उक्त लिपि से हिंदी भाषा-भाषियों का परिचय नहीं है। किंतु अब तो श्री भाई मोहनसिंह वैद्य ने खालसा प्रचारक प्रेस तरनतारन (पंजाब) से और सर्व हिंद सिल मिशन ने अमृत प्रिंटिंग प्रेस, अमृतसर से देवनागरी लिपि में श्री गुरु ग्रंथ साहब का प्रकाशन किया है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित कवीर ग्रंथावली के परिशिष्ट में श्री श्यामसुन्दरदास ने श्री गुरु ग्रंथ साहब में आए हुए कवीर के पदों को उद्धृत अवश्य किया है किंतु उसमें कुछ पद छूट गए हैं। श्री गुरु

ग्रंथ साहब में कवीर की साखियों (सलोकों) की संख्या २४३ है। कवीर ग्रंथावली में केवल १६२ है। श्री गुरु ग्रंथ साहब में कवीर की पद-संख्या २२८ है, कवीर ग्रंथावली में केवल २२२ है। इस प्रकार कवीर ग्रंथावली में ३६ साखियाँ (सलोक) और ६ पद नहीं हैं जो श्री गुरु ग्रंथ साहब में हैं। मैंने 'संत कवीर' का सम्पादन श्री गुरु ग्रंथ साहब के पाठ के अनुसार ही वड़ी सावधानी से किया है। इसमें कवीर का काव्य पाठ्य-भाग और संख्या की दृष्टि से ठीक ठीक प्रस्तुत किया गया है। अतः कवीर की काव्य सम्बन्धी सभी सामग्री को देखते हुए 'संत कवीर' के पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए।

पंद्रहवीं शताब्दी में मध्यदेश एक नवीन युग की प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी संस्कृति को एक आधात लगा था और उसके आदर्श स्थंडहरों का रूप ले रहे थे। मुसलमान शासकों के क्षम्भीर का परिचय बढ़ते हुए प्रभाव ने इस्लाम को जितनी अधिक शक्ति दी, उतनी ही अधिक व्यापकता भी। जनता के मंपर्क में यह नया विश्वास दुर्निवार रूप से उसके जीवन के चारों ओर ढारा गया। हिंदू नर्म इस्लाम को अन्य विदेशी धर्मों की भाँति आत्म-मातृन कर मका क्योंकि इस्लाम मना के माय उठा था और उसकी प्रगति हिंदुओं के प्रति निर्गंभीरी थी। हिंदू और मुसलमानों के मुद्दाओं को इस विप्रमता ने धार्मिक वातावरण में एक अशांति उत्पन्न कर दी थी। अनेक हिंदू मुसलमान ही गण थे और अनेक अपनी गान्धीजी में मंत्रदाता थे। एक शर्गर में जैसे दो प्राण ही जिनमें निर्वासन नहीं होता था।

इसम अपने व्यानार्थिक स्वर में गगल हो, उसमें आचार की दण्डायन परंपराएँ न हों, उने गत्यन्गत्याण प्राप्त हो और उसे अंगी-कर्म वर्गों पर प्राप्तिकार का प्रेश्वर्य प्राप्त हो, किर भी जिगकी

शिराओं में हिंदू दर्शन और शाख की सूक्षियों ने रक्त बन कर प्राण-संचार किया हो उसे इस्लाम का सामीप्य शरीर पर उठे हुए ब्रण की भाँति कष्टकर क्यों न होता ?—फिर शासकों पर छाए हुए उलमाओं के प्रभाव ने—जो फ़ौरोज और सिकन्दर पर विशेष रूप से था—जिस धार्मिक असहिष्णुता को जन्म दिया था, वह पद्न्पद पर सांप्रदायिकता की आग लगा रही थी। एक और तो राजनीति की निरंकुशता भय और आतंक की सृष्टि करती दूसरी और सूक्षियों की शांतिप्रिय और आध्यात्मिक दृष्टि हिंदू और मुसलमानों को अपनी और आकर्षित करते हुये उन्हें इस्लाम में श्रद्धा रखने के लिये प्रेरित करता थी। ऐसी स्थिति में हिंदू और मुसलमानों में किसी प्रकार का धार्मिक समझौता होना अवश्यक था। दोनों को एक ही देश में निवास करना था। दोनों में से एक भी अपना अस्तित्व खोने के लिए तैयार न था। विग्रह की नीति से दोनों की उन्नति का मार्ग घंट था। अतः एक धार्मिक समझौते के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं और मध्यदेश में एक नवीन युग का निर्माण हुआ। उस युग का सूत्रपात करने में संत कवीर का प्रमुख हाथ था।

जो लोग हिंदू धर्म का शास्त्रीय ज्ञान रखते थे उन्हें तो धर्म की वास्तविक पहिचान थी। वे कदृता से अपने धर्म का समर्थन करते थे और प्राणों के भय से भी धर्म-परिवर्तन के लिये तैयार न थे किंतु जो लोग धर्म को केवल जीवनगत विश्वास के रूप में मानते थे, जिन्हें धर्म की गूढ़ बातों से परिचय नहीं था, जो सांस्कृतिक आदर्शों का ज्ञान नहीं रखते थे उनके धर्म-परिवर्तन का प्रश्न विशेष महत्त्व नहीं रखता था। फिर पदाधिकार का प्रलोभन कवीर का महत्त्व एवं भौतिक जीवन का ऐश्वर्य उन्हें किसी भी धर्म की ओर आकर्षित कर सकता था, चाहे वह धर्म इस्लाम हो अथवा अन्य कोई। ऐसी जनता को अपने धर्म पर

शिराओं में हिंदू दर्शन और शाख की सूक्षियों ने रक्त बन कर प्राण-संचार किया हो उसे इस्लाम का सामीप्य शरीर पर उठे हुए ब्रण की भाँति कष्टकर क्यों न होता ?—फिर शासकों पर छाए हुए उलमाओं के प्रभाव ने—जो फ़ौरोज और सिकन्दर पर विशेष रूप से था—जिस धार्मिक असहिष्णुता को जन्म दिया था, वह पद्न्पद पर सांप्रदायिकता की आग लगा रही थी । एक और तो राजनीति की निरंकुशता भय और आतंक की सृष्टि करती दूसरी और सूक्षियों की शांतिप्रिय और आध्यात्मिक दृष्टि हिंदू और मुसलमानों को अपनी और आकर्षित करते हुये उन्हें इस्लाम में श्रद्धा रखने के लिये प्रेरित करता थी । ऐसी स्थिति में हिंदू और मुसलमानों में किसी प्रकार का धार्मिक समझौता होना अवश्यक था । दोनों को एक ही देश में निवास करना था । दोनों में से एक भी अपना अस्तित्व खोने के लिए तैयार न था । विग्रह की नीति से दोनों की उन्नति का मार्ग घंट था । अतः एक धार्मिक समझौते के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं और मध्यदेश में एक नवीन युग का निर्माण हुआ । उस युग का सूत्रपात करने में संत कवीर का प्रमुख हाथ था ।

जो लोग हिंदू धर्म का शास्त्रीय ज्ञान रखते थे उन्हें तो धर्म की वास्तविक पहिचान थी । वे कदृता से अपने धर्म का समर्थन करते थे और प्राणों के भय से भी धर्म-परिवर्तन के लिये तैयार न थे किंतु जो लोग धर्म को केवल जीवनगत विश्वास के रूप में मानते थे, जिन्हें धर्म की गूढ़ बातों से परिचय नहीं था, जो सांस्कृतिक आदर्शों का ज्ञान नहीं रखते थे उनके धर्म-परिवर्तन का प्रश्न विशेष महत्त्व नहीं रखता था । फिर पदाधिकार का प्रलोभन कवीर का महत्त्व एवं भौतिक जीवन का ऐश्वर्य उन्हें किसी भी धर्म की ओर आकर्षित कर सकता था, चाहे वह धर्म इस्लाम हो अथवा अन्य कोई । ऐसी जनता को अपने धर्म पर

समर्थ हो सकते थे। साधारण जनता धर्म के शास्त्रीय ज्ञान से संपक रखने में अपने को अयोग्य पाती थी। अतः धार्मिक सिद्धांतों को जनता के समीप तक उन्हीं की भाषा में पहुँचाने का श्रेय कवीर को है। रामानंद की शक्ति का आश्रय लेकर कवीर ने साधारण भाषा के द्वारा अपने मार्मिक सिद्धांतों को अत्यंत स्पष्ट रूप में जनता के सामने रखा। उस समय भाषा बन रही थी। मध्यदेश की भाषा में उस समय साहित्य की रचना नहीं के वरावर थी। अमीर खुसरो की पहेलियाँ जीवन के किसी गंभीर तथ्य का निरूपण नहीं कर सकी थीं, उनमें केवल मनोरंजन और कौटूहल था। नाथ संप्रदाय की रचनाओं में भी भाषा का माध्यम लिया गया किंतु वे समस्त रचनाएँ प्रश्नोत्तर के रूप में होकर केवल सिद्धांतोक्तियाँ ही बन कर रह गईं। यदि कहीं वर्णन भी है तो वह उपासना पद्धति के नीरस विशिष्ट रूपकों में। कवोर ने सब से पहले भाषा में जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाया और धर्म और दर्शन के ऐसे सिद्धांत निरूपित किए जो सरलता से जनता द्वारा हृदयंगम किए जा सकते थे। यह मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि नाथपंथ की विचार-शैली और रूपक-रहस्य का प्रभाव कवीर पर विशेष रूप से पड़ा है। उन्होंने सिद्धांत और वाक्य भी नाथ-पंथ से प्राप्त किए हैं किंतु कवीर नाथपंथ के आदर्शों तक ही नहीं एक गए उन्होंने नाथपंथ से प्राप्त की गई सामग्री को अधिक व्यावहारिक और जन-सुलभ बनाने की चेष्टा की। जीवन के अंग-प्रत्यंग की समीक्षा कर उन्होंने धर्म और जीवन को इतना सरल और सुगम साधना-संपन्न बनाया कि वह प्राणों में निवास करने योग्य बन गया। यह प्रचार उन्हें जनता के बीच करना था। अतः स्पष्ट और शक्ति-संपन्न शैली ही इस उद्देश्य के उपयुक्त थी। जो कवीर के काव्य की तुलना तुलसी के काव्य से करना चाहते हैं उन्हें तत्कालीन भाषा और जनता की मनोवृत्ति नहीं भूल जानी चाहिए। कवीर को साहित्यिक भाषा का

शिलान्यास करना था और अन्यवस्थित धार्मिक विषयता के प्रश्नम आधार को रोकने का प्राचीर खड़ा करना था । काव्य के अंगों का सुकुमार सौंदर्य जनता के जर्जरित विश्वासों को आकर्षित न कर सकता था । प्रेम और आख्यानक काव्य की प्रशस्त परंपरा ने तुलसी की अनेक कठिनाइयाँ हल कर दी थीं और वे अपने आदशों और घटनासूत्रों को अधिक काव्य-सौंदर्य और प्रतिभा-पटों से सुतजित कर सकते थे । कवीर ने अपनी प्रखर भाषा और तीखी भाव-व्यंजना से जिस काव्य का सुजन किया वह साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण भले ही कर गया हो किंतु उसके द्वारा साहित्य और धर्म में युगांतर अवश्य आया । हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की सांप्रदायिक सीमा तोड़ कर उन्हें एक ही भावधारा में वहा ले जाने का अपूर्व बल कवीर के काव्य में था । और यह बल जनता के बीच बोली और सभभी जाने वाली रुची और अपरिष्कृत भाषा के ऊपर अवलंबित था जिसमें धार्मिक पाञ्चंडों और अंधविश्वासों को तोड़ने का विद्युत-वेग था । जहाँ भारतीय समाज में हिंदू और मुसलमानों के बीच वंधुत्व भाव का अंकुर उत्पन्न करना कवीर का अभिप्राय था वहाँ व्यक्तिगत साधना की पुनीत अनुभूति भी उनका लक्ष्य था । अपने स्वाधीन और निर्भीक विचारों से उन्होंने सुधार के नवीन मार्ग की ओर संकेत किया । उनकी समदृष्टि ने ही उन्हें सार्वजनीन और सार्वभौमिक बना दिया ।

कवीर के इस काव्य में जो जीवन संबंधी सिद्धांत हैं उनका आधार शास्त्रीय ग्रंथ नहीं हैं । उन्होंने इन सिद्धांतों को अनुभूत अथवा दैनिक जीवन में प्रतिदिन घटित होने वाली परिस्थितियों के प्रकाश में ही लिखा है । उनके तर्क दर्शन-सम्मत न हों किंतु वे सहज ज्ञान से ओत-ग्रोत हैं । नम धूमने से यदि योग मिलता तो वन के सभी मृग मुक्त हो जाते । सिर का मुँडन कराने से यदि सिद्धि पाई जा सकती तो मुक्ति की ओर भेड़ क्यों न चली गई ? इस प्रकार के तर्क पंडित और

शास्त्रियों द्वारा मान्य नहीं हो सकते तथापि जनता के हृदय में सत्य और विश्वास की अभिट रेखा खींच सकते हैं क्योंकि इस प्रकार के तर्क उनके अनुभव से दूर नहीं हैं। इसलिए जहाँ शास्त्रियों और समाज के उच्च वर्ग के व्यक्तियों में कवीर के सिद्धांतों के लिए आदर नहीं है, वहाँ साधारण जनता समस्त श्रद्धा-संपत्ति से उन सिद्धांतों का गीत गाती है। कवीर ने इन्हीं अनुभूति सिद्धांतों और जीवन की वास्तविकताओं द्वारा अपने काव्य को श्री-संपन्न किया है। पुस्तक-ज्ञान की अपेक्षा वे अनुभव-ज्ञान को अधिक महत्व देते हैं। पुस्तक-ज्ञान से तो अर्हकार का विषय उत्पन्न होता है किंतु जीवन के सहज ज्ञान से संतोष और विश्वास का मधुर रस मन में संचरित होने लगता है।

जीवन-वृत्त की आलोचना

कवीर ने अपने व्यक्तिगत निर्देशों में कोई तिथि या संवत् का उल्लेख नहीं किया। अतः अंतर्सर्वद्य से हम उनके आविर्भाव काल अथवा निधन-काल के संबंध में कुछ भी नहीं कह सकते। उनका जन्म ऐसे जुलाहे कुल में हुआ था जिसमें उनके संत-जीवन के लिए विशेष सुविधाएँ थीं। कवीर ने अपने पिता को एक बड़ा गोसाई कहा है। वनारस और उसके आसपास उस समय के गोसाई 'दसनामी' भेद से अपनी उपासना में कहीं शिव और कहीं विष्णु के भक्त होते थे। कवीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति में थे जिसमें मुसलमानी संस्कारों के साथ ही साथ शिवोपासक योगियों के भी संस्कार थे और वे किसी शिवोपासक 'दसनामी' संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसाई कहलाते थे। हस समय नाथपंथ का प्रभाव इन योगियों पर विशेष रूप से था जिससे वे 'शरीर-साधन' की परंपरा में विश्वास रखते थे। कवीर ने अपने पिता का निर्देश करते हुए यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि "मैं उस पिता की बलि जाता हूँ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ।

उन्होंने पंच (इंद्रियो) से मेरा माथ छुड़ा दिया है, अब मैंने पंच (इंद्रियों के विष) को मार कर पैरों के नाचे दबा दिया है" अतः यह स्पष्ट है कि कवीर के विता जुलाहों की जाति में होकर भी योगियों के आचारों में विश्वास रखते थे। इस संबंध में मैं श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत से सहमत हूँ जिनके अनुसार कवीर जिस बुनाहा वंश में पालित हुए थे 'वह इसी प्रकार के नाथ मतावलंभी गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था।' योगियों की परम्परा में होने के कारण कवीर के कुल में 'राम' नाम के लिए विशेष श्रद्धा न होगी इसलिए जब रामानंद के प्रभाव से कवीर ने राम-नाम स्वीकार किया होगा तो उनकी माता का ज्ञुब्ध होना स्वाभाविक था।

कवीर के जन्म के विषय में जो किंवदंती है कि वे विघ्वा व्रात्यणी के पुत्र थे और उस विघ्वा व्रात्यणी ने लोक-लड्जा की रक्षा के लिए उन्हें लहरतारा तालाव के समाप्त फैंक दिया था तथा इस अवस्था में उन्हें नीरु और नीमा जुलाहा-दंपति ने उठा लिया था, कोई विशेष महत्व नहीं रखती। हमारे सामने इस प्राणार का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। इसी भाँति उनका ज्योति-स्वरूप होकर लहरतारा के कमल-पत्र पर उतर कर शयन करना एक धार्मिक विश्वास है। इस संबंध में कुछ भी कहना कवीर-पंथियों की धार्मिक भावना पर आधात पहुँचाना है।

कवीर का जन्म-स्थान अभी तक 'काशी' माना जाता रहा है और इस संबंध में प्रायः ये पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—'काशी मैं हम प्रकट भये हैं, रामानंद चिताए।' किन्तु ये पंक्तियाँ न तो 'संत कवीर' में हैं और न किसी प्रामाणिक पोथी में ही पाई जाती हैं। 'संत कवीर' में कवीर की एक पंक्ति ऐसी है जिससे ज्ञात होता है कि वे मगहर में ही उत्पन्न हुए थे। पहले दरसन मगहर पाइअ्री पुनि कासी वसे आई। (रागु रामकली ३) यथेष्ट संकेतपूर्ण है। मृत्यु के समय

उनका मगहर लौट जाना मनुष्य की उस स्वाभाविक प्रेरणा का भी प्रतीक हो सकता है जिससे वह अपनी जन्मभूमि या उसके समीप ही आकर मरना चाहता है। अतः मेरे दृष्टिकोण से कवीर का मगहर में जन्म मानना अधिक युक्तिसंगत है।

कवीर के पारिवारिक जीवन के संबंध में मतभेद है। कवीरपंथी साधुओं का कथन है लोई उनकी शिष्या मात्र थी, स्त्री नहीं। वह एक बनखंडी वैरागी की पोष्य पुत्री थी जिसे उसने लोई (ऊनी चादर) में लिपटा हुआ पाया था। कवीर की भक्ति और निष्पृह भावना देखकर वह उनके साथ रहने लगी थी। किंतु कवीर की 'मेरी बहुरिया को धनिआ नाउ' (रागु आशा ३३) और 'बूढ़ा वंसु कवीर का उपजिओ पूतु कमालु' (सलोकु ११५) निश्चित रूप से सिद्ध करते हैं कि कवीर का पारिवारिक जीवन स्त्री और पुत्र से भरभूर था। उनसे चाहे कवीर को संतोष न रहा हो, यह दूसरी बात है। 'धनिआ' नाम के स्थान पर हमें 'धोई' नाम भी मिलता है जिसका संकेत श्री बनमाली जी 'कवीर का साखी ग्रंथ' की अवतरणिका में करते हैं।

कवीर ने जिस गुरु की विस्तार-पूर्वक-वंदना की है वे श्री रामानंद जी ही थे। कवीर को अपने निर्भीक धार्मिक विश्वासों के कारण सिकंदर लोदी से भी संघर्ष लेना पड़ा। इस विषय की यथेष्ठ चर्चा कवीर की जन्मनितिय के संबंध में हो चुकी है अतः यहाँ कुछ और लिखने की आवश्यकता नहीं। कवीर की मृत्यु के संबंध में भी निश्चित है कि उन्होंने मगहर में जाकर अपना शरीर-त्याग किया।

सिरी रागु

१

एक सुश्रान्ति के घरि गावणा ।
 जननी जानत सुतु बंडा होतु है
 इतनाकु न जानै जि दिन दिन अवध घट्टु है ॥
 मोर मोर करि अधिक लाहु धरि पेखत ही जमराड हसै ॥
 ऐसा तैं जगु भरमि लाइशा ।
 . कैसे वूँझे जब मोहिशा है माहिशा ॥१॥
 कहुत कवीर छोड़ि विलिशा रस
 इतु संगति निहचड मरणा ॥
 रमईशा जपहु प्राणी अनत जीवण
 वाणी इन विधि भव सागरु तरणा ॥२॥
 जां तिसु भावै ता लागै भाउ ।
 भरमु भुलावा विचहु जाह ।
 उपजै सहजु गिशान मति जागै ।
 शुरु प्रसादि अंतरि लिव लागै ॥
 इतु संगति नाही मरणा ।
 हुक्कुसु पछाणि ता खसमै मिलणा ॥३॥

२

अचरज एकु सुनहु रे पंडीशा
 अब किछु कहनु न जाई ।
 सुरि नर गण गंधव जिनि मोहे
 त्रिभवण मेखुली लाई ॥
 राजा राम अनहद किंगुरी वाजै
 जाकी दिसटि नाद लिव लागै ॥१॥

भाठी गगनु सिंहिआ अरु चुंडिआ
 कनक कलस दृकु पाहिआ ।
 तिसु महि धार छुआई अति निरमल
 रस महि रसन चुआइआ ॥२॥
 एक जु वात अनूप धनी है
 पवन पिश्राला साजिआ ।
 तीनि भवन महि एको जोगी
 कहहु बबनु है राजा ॥३॥
 ऐसे गिरान प्रगटिआ पुरखोत्तम
 कहु कवीर रंगि राता ।
 अउर दुनी सभ भरमि भुलानी
 मनु राम रसाइन माता ॥४॥

राग गउड़ी

१

शब मोहि जलत राम जलु पाइथा ।
 राम उदकि तनु जलतु बुझाइथा ॥
 मनु भारण कारणि बन जाईथै ।
 सो जलु विनु भगवंत न पाईथै ॥१॥
 जिह पावक सुरि नर है जारे ।
 राम उदकि जन जलत उवारे ॥२॥
 भव सागर सुख सागर माही ।
 पीचि रहे जल निखुटत नाही ॥३॥
 कहि कबीर भजु सारिंगपानी ।
 राम उदकि मेरी तिखा बुझानी ॥४॥

२

माधउ जल की पियास न जाह ।
 जल महि अरानि उठी अधिकाह ॥
 तूं जलनिधि हउ जल का मीनु ।
 जल महि रहउ जलहि विनु खीनु ॥१॥
 तूं पिंजरु हउ सूअटा तोर ।
 जसु मंजारु कहा करै मोर ॥२॥
 तूं तरवरु हउ पंखी आहि ।
 मंदभागी चेरो दरसनु नाहि ॥३॥
 तूं सतिगुरु हउ नडतनु चेला ।
 कहि कबीर मिलु श्रंत की वेला ॥४॥

३

जब हम एको एकु करि जानिथा ।
 तब लोगह काहे दुखु मानिथा ॥

हम अपतह अपुनी पति गोई ।
 हमरे खाजि परहु मति कोई ॥१॥
 हस मंद मंद मन माही ।
 साझ पाति काहु मिठ नाही ॥२॥
 पति अपति ताकी नही लाज ।
 तब जानहुंग जब उधरेंगा पाज ॥३॥
 कहु कवीर पति हरि परवानु ।
 सरब तिशागि भजु केवल रामु ॥४॥

५

अधर भूए किया लोगु करीजे ।
 तड़ कीजे जड़ आपन जीजे ॥
 मै न मरउ मरिदो संसारा ।
 अब महि मिलिथो है जी आवन हारा ॥१॥
 इथा देही परमल महकंदा ।
 ता सुख विसरे परमानंदा ॥२॥
 कृश्चित पकु पंच पनिहारी ।
 दूटी लाख भरे मति हारी ॥३॥
 कहु कवीर इक बुधि धीचारी ।
 ना ओहु कृश्चित ना पनिहारी ॥४॥

५

असथावर जंगम कीट पतंगा ।
 अनिक जनम कीए घहु रंगा ॥
 औसे घर हम घहुतु पसाए ।
 जब हम राम गरभ होइ थाए ॥१॥
 जोगी जती पती ब्रह्मचारी ।
 कबहु राजा छुत्रपति कबहु भेखारी ॥२॥

संत कवीर

साकत मरहि संत सभि जीवहि ।
 राम रसाहनु रसना पीवहि ॥३॥
 कहु कवीर प्रभ किरपा कीजै ।
 हारि परे अब पूरा दीजै ॥४॥

६

शैसो अचरजु देखिओ कवीर ।
 दधि कै भो लै विरोलै नीरु ॥ ५ ॥
 हरि शंगुरी गदहा चरै ।
 नित उठि हासै हीगै मरै ॥९॥
 माता भैसा शंसुहा जाइ ॥ ६ ॥
 कुदि कुदि चरै रसातलि पाइ ॥२॥
 कहु कवीर परगढु भई खेड ।
 । लेले कउ चूधै नित भेड ॥३॥
 राम रमत मति परगटी आई ।
 कहु कवीर गुरि सोकी पाई ॥४॥

७

जिड जल छोडि वाहरि भइओमीना ।
 पूरब जनस हउ तप का हीना ॥
 अब कहु राम कवन गति मोरी ।
 तजीले बनारस मति भई थोरी ॥१॥
 सराल जनसु सिवपुरी गवाहथा ।
 मरती बार मगहरि उठि आहथा ॥२॥
 बहुतु बरस तपु कीआ कासी ।
 मरनु भइथा मगहर की वासी ॥३॥
 कासी मगहर सम बीचारी ।
 ओछी भगति कैसे उत्तरसि पारी ॥४॥

संत कवीर

कहु गुर गजि दिव सभु को जाने ।
मुआ कदीरु रमत ची रामै ॥१॥

८

चोआ चंदन मरदन शंगा ।
सो तनु जलं काढ कै संगा ॥
इसु तन धन की कवन बठाई ।
धरनि परै उरवारि न जाई ॥२॥
राति जि सोवहि दिनकरहि काम ।
इकु खिनु लेहि न हरि को नाम ॥३॥
हाथिअंडोर मुखि खाइशो तंबोर ।
मरती बार कसि बाधिशो चोर ॥४॥
गुरमति रसि रसि हरि गुन गावै ।
रामै राम रमत सुखु पावै ॥५॥
किरपा करि कै नामु द्विदाई ।
हरि हरि बासु सुगंध बसाई ॥६॥
कहत कलीर चेति रे श्रंघा ।
सति रासु मूठा सभु धंघा ॥७॥

९

जम ते उलटि भए हैराम ।
दुख विनसे मुख कीओ विसराम ॥
वैरी उलटि भए है मीता ।
साकत उलटि सुजन भए चीता ॥
अय मोहि सरधु कुसक्त करि मानिआ ।
सांति भई जब गोविहु जानिआ ॥१॥
तन महि होती कोटि उपाधि ।
उलटि भई सुख सहजि समाधि ॥

आपु पछानै आपै आप ।
 रोगु न विअपै तीनौ ताप ॥२॥
 अब मनु उलटि सनातनु हूआ ॥
 तथ जानिआ जय जीवत मूआ ॥
 कहु कवीर सुखि सहजि समावउ ।
 आपि न डरउ न अवर डरावउ ॥३॥

१०

पिंडि मुच्छै जीउ किह घरि जाता ।
 सबदि अतीति अनाहदि राता ॥ १ ॥
 जिनि रामु जानिआ तिनहि पछानिआ ।
 जिउ गुंगे साकरु मनु मानिआ ॥१॥
 श्रैसा गिआनु कथै बनवारी ।
 मन रे पचन द्रिङ् सुखमन नारी ॥
 सो गुरु करहु जि बहुरि न करना ।
 सो पदु रचहु जि बहुरि न रचना ॥
 सो धिआनु धहुरि जि बहुरि न धरना ।
 ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥२॥
 उलटी गंगा जमुन मिलावउ ।
 दिनु जक संगम मन महि न्हावउ ॥
 लोचा समसरि इहु विउहारा ॥ २ ॥
 ततु बीचारि किआ अवरि बीचारा ॥३॥
 आपु तेजु वाह प्रिथमी अकासा ।
 ऐसी रहत रहउ हरि पासा ॥
 कहै कवीर निरंजन धिआवउ ।
 तितु धरि जा जि बहुरि न श्रावउ ॥४॥

११

सुख मांगत हुहु आई आई ।
 सो सुख हमहु न मांगिआ भाई ॥
 विविआ प्रजहु सुरति सुख आसा ।
 कैसे होई है रागा रास निवासा ॥१॥
 इसु सुख तै सिव ब्रह्म दराना ।
 सो सुख हमहु साजु करि जाना ॥२॥
 सनकादिक नारद सुनि सेखा ।
 तिन भी तन महि मनु नहीं पेखा ॥३॥
 इसु मन कउ कोई खोजहु भाई ।
 तन छुट मनु कहा समाई ॥४॥
 गुर प्रसादी जैरेड नामा ।
 भगति कै प्रेमि इनहीं है जाना ॥५॥
 इसु मन कउ नहीं आवन जाना ।
 जिसका भरमु गहशा तिनि साजु पदाना ॥६॥
 इसु मन कउ रूपुन रेखिआ काई ।
 हुकमे होइआ हुकमु घूमि समाई ॥७॥
 इस मन का कोई जानै भेड ।
 इह मनि लीण भए सुखदेड ॥८॥
 जीउ पक्ष अरु सगल सरीरा ।
 इसु मन कउ रमि रहे कवीरा ॥९॥

१२

अहिनिसि एक नाम जो जागे ।
 केतक सिध भए लिव लागे ॥
 साधक सिध सगल सुनि हारे ।
 एक नाम कलिप तर तारे ॥१॥

जो हरि हरे सु होहि न आना ।
कहि कवीर राम नाम पछाना ॥२॥

१३

रे जीश्र निलज लाज तुहि नाही ।
हरि तजि कत कहू के जांही ॥
जाको ठाकुरु झचा होई ।
सो जनु पर घर जात न सोही ॥१॥
सो साहिवु रहिआ भरपूरि ।
सदा संति नाही हरि दूरि ॥२॥
कबला चरन सरन है जा के ।
कहु जन का नाही घर ता के ॥३॥
सभु कोऊ कहै जासु की वाता ।
सो संग्रथु निज पति है वाता ॥४॥
कहै कवीरु पूरन जग सोई ।
जाकै हिरदै अवसु न होई ॥५॥

१४

कउनु को पूतु पिता को का को ।
कउनु मरै को देह संतापो ॥
हरि ठग जग कउ ठगउरी लाई ।
हरि के विश्वोग कैसे जीश्रड मेरी माई ॥१॥
कउन को पुरखु कउन की नारी ।
इथा तत लेहु सरीर विचारी ॥२॥
कहि कवीर ठग सिउ मनु मानिआ ।
गई ठगउरी ठगु पहिचानिआ ॥३॥

१५

अथ सो कट भय राजा राम सहाई ।
जनम मरन कटि परम गति पाई ॥
साधू संगति दीओ रलाइ ।
पंच दूत ते लीओ द्युदाइ ।
अंचित नामु जपउ जपु रसना ।
अमोक दासु करि लीनो अपना ॥१॥
सतिगुर कीनो पर उपकारु ।
काढि लीन सागर संसार ॥
चरन कमल सिउ लागो प्रीति ।
गोविंदु वसै निता नित चीत ॥२॥
माइआ तपति बुक्षिआ अंगिआरु ।
मनि संतोखु नामु आधारु ॥
जलि थलि पूरि रहे प्रभ सुआमी ।
जत पेखउ तत अंतरजासी ॥३॥
अपनी भगति आप ही दिड़ाई ।
पूरब लिखतु मिलिआ मेरे भाई ॥
जिसु किपा करे तिसु पूरन साज ।
कवीर को सुआमी गरीबनिवाज ॥४॥

१६

जलि है सूतकु थल है सूतकु सूतक ओपति होई ।
जनमे सूतकु मूढ़ फुनि सूतकु सूतक परज विगोई ॥
कहु रे एंडीआ कउन पवीता ।
बैसा गिआनु जपहु मेरे मीता ॥१॥
नैनहु सूतकु बैनहु सूतकु सूतकु स्ववनी होई ।
ऊठत घैठत सूतकु लागे सूतकु परे रसोई ॥२॥

फासन की विधि सभु कोऊ जानै छूटन की इकु कोई ।
कहि कबीर रामु रिदै विचारै सूतकु तिन्है न होई ॥३॥

१७

भगरा एकु निवेरहु राम ।
जउ तुम अपने जन सौ कामु ॥
इहु मनु बड़ा कि जा सउ मनु मनिआ ।
रामु बड़ा कै रामहिं जानिआ ॥१॥
ब्रह्मा बड़ा कि जासु उपाहिआ ।
वेदु बड़ा कि जहाँ ते आहिआ ॥२॥
कहि कबीर हउ भइआ उदासु ।
तीरथु बड़ा कि हरि का दासु ॥३॥

१८

देखौ भाई ज्ञान की आई आंधी ।
सभै उडानी अम की टाटी रहै न माइआ वांधी ॥
दुचिते की दुइ थूनि गिरनी मोहु घलेंडा दृटा ।
तिसना छानि परी घर उपरि दुरमति भाँडा फूटा ॥१॥
आंधी पाँच्छै जो जलु वरखै तिहि तेरा जनु भीनां ।
कहि कबीर मनि भइआ प्रगासा उंदै भानु जब चीना ॥२॥

१९

हरि जसु सुनहि न हरि गुन गावहि ।
वातन ही असमानु गिरावहि ॥
अैसे लोगन सिड किअा कहीअै ।
जो प्रभ कीए भरति ते वाहज तिन ते सदा दराने रहीअै ॥१॥
आपि न देहि चुरू भरि पानी ।
तिह निंदहि जिह गंगा आनी ॥२॥

घैठत उठत कुटिलता चालहि ।
 आपु गण अउरन हू घालहि ॥३॥
 द्याहि कुचरचा आत न जानहि ।
 बहमा हू को कहिश्वा न भानहि ॥४॥
 आपु गण अउरन हू खोबहि ।
 आगि लगाह मंदर सै खोबहि ॥५॥
 अवरन हसत आप हहि काने ।
 तिन कड देखि कवीर लजाने ॥६॥

२०

जीवत पितर न माने कोऊ मूँ सराध कराही ।
 पितर भी वधुरे कहु किड पावहि कजआ कूकर खाही ॥
 मो कड कुसलु थतावहु कोई ।
 कुसल कुसलु करते जगु विनसे कुसलु भी कैसे होई ॥७॥
 माटी के करि देवी देवा तिसु आगे जीड देही ।
 ऐसे पितर तुमारे कहीश्रहि आपन कहिआ न लेही ॥८॥
 सरजीउ काटहि निरजीउ पूजहि अंतकाल कउ भारी ।
 राम नाम की गति नही जानी भै हूवे संसारी ॥९॥
 देवी देवा पूजहि ढाक्हहि पारवहमु नही जाना ।
 कहत कवीर अकुलु नही चेतिआ विखिआ सिड लपटाना ॥१०॥

२१

जीवत मरै मरै कुनि जीवै ऐसे सुनि समाइआ ।
 अंजन भाहि निरंजनि रहीश्वै बहुदि न भव जलि पाहआ ॥
 मेरे राम ग्रैसा खीरु विलोईश्वै ॥
 गुर मति मनूआ असथिरु राखहु इनि विधि अंग्रितु पीओईश्वै ॥१॥
 गुर कै वाणि घजर कल छेदी प्रगटिआ पदु परगासा ।
 सकति अधेर जेवही अमु चूका निहचलु सिव घरि बासा ॥२॥

तिनि विनु वाए धनखु चढाइश्वै दृहु जगु वेधिआ भाई ।
दह दिस वूडी पवन सुलावै ढोरि रही लिव लाई ॥३॥
उनमनि मनूआ सुन्नि समाना दुविधा दुरमति भागी ।
कहु कवीर अनभट इकु देखिआ राम नामि लिव लागी ॥४॥

२२

उलटत पवन चक्र खड भेदे सुरति सुन थगरागी ।
आवै न जाह मारै न जीवै तासु खँजु वैरागी ॥
मेरे मन मन ही उलटि समाना ।
गुर परसादि अकलि भई अवरै न तरु था वेगाना ॥१॥
निवरै दूरि दूरि फुनि निवरै जिन जैसा करि मानिआ ।
अखलती का जैसे भइआ घरेडा जिनि पीआ तिनि जानिआ ॥२॥
तेरी निरगुन कथा काइ सिड कहिश्वै शैसा कोइ बिधेकी ।
कहु कवीर जिनि दीश्वा पलीता तिनि तैसी मल देखी ॥३॥

२३

तह पावस सिंधु धूप नही छहीश्वा तह उतपति परलड नाही ।
जीवन मिरतु न दुखु सुखु विआए सुन समाधि दोऊ तह नाही ॥
सहज की अकथ कथा है निरारी ।
तुलि नही चढै जाह न सुकाती हलुकी लगै न भारी ॥१॥
अरध उरध दोऊ तह नाही राति दिनसु तह नाही ।
जलु नही पवनु पावकु फुनि नाही सतिगुर तहा स साही ॥२॥
अगम अगोचर रहै निरंतरि गुर किरपा ते लहीश्वै ।
कहु कवीर बलि जाउ गुर अपुने सत संगति मिलि रहीश्वै ॥३॥

२४

पापु पुंजु दुह वैल विसाहे पवनु पूजी परगासिथो ।
त्रिसना गूणि भरी घट भीतरी इन विधि टांड 'विसाहिथो ॥

श्रैसा नाहकु रामु हमारा ।
 सगल संसार कियो बनजारा ॥१॥
 कामु कोधु दुद भये जगाती मन नर्नग बट्यारा ।
 पंच ततु मिलि दानु निवरहि टांडा उतरियो पारा ॥२॥
 कहत कवीर सुनहु रे संतहु अब श्रैनी बनि प्राँड़ ।
 धाटी चढत वैलु इकु थाका चलो गोनि दिट्काई ॥३॥

२५

पेवकदै दिन चारि है साहुरदै जाणा ।
 अंधा लोकु न जाणाई मूरखु एआणा॥
 कहु उठीआ वाघै धन खड़ी ।
 पाहु घरि आए सुकलाऊ आए ॥१॥
 ओह जि दिसै खूबड़ी कउन लाखु बाहारी ।
 लाजु घड़ी सित तूटि पढ़ी उठि चली पनिहारी ॥२॥
 साहित्य होइ दहशालु क्रिपा करे अपुना कारखु सवारे ।
 ता सोहागणि जाणीअै गुर सबदु वीचारे ॥३॥
 किरत की बांधी सभ फिरै देखहु वीचारी ।
 एस नो किआ आखीअै किआ करै विचारी ॥४॥
 भई निरासी उठि चली चित दंधि न धीरा ।
 हरि की चरणी लागि रहु भजु सरणि कबीरा ॥५॥

२६

जोगी कहहि जोगु भल मीठा अवरु न दूजा भाई ।
 रुंदित सुंदित एकै सबदी एइ कहहि सिधि पाई ।
 हरि विनु भरमि भुजाने अंधा ।
 जा पहि जाउ आपु कूटकावनि ते बाधे वहु फंधा ॥१॥
 जह ते उपजी तही समानी इहि विधि विसरी तब ही ।
 पंडित गुणी सूर हम दावे एहि कहहि वड हम ही ॥२॥

जिसहि दुम्हाए सोई वूकै विनु वूम्हे किउ रहीअै ।
 सतिगुरु मिलै अंवेरा चूकै इन विधि माणकु लहीअै ॥३॥
 तजि बावे दाहने विकारा हरि पदु दिदु कार रहीअै ।
 कहु कबीर गूँगै गुह खाइया पृथ्वे ते किआ कहीअै ॥४॥

२७

जहु कहु अहा तहा किछु नाही पंच ततु तह नाही ।
 इहा पिगला सुखमन बंदे ए अवगन कत जाही ॥
 तागा तूटा गगनु विनसि गहश्चा तेरा बोलतु कहा समाई ।
 एह संसा मो कउ अनदिनु विआपै मो कउ को न कहै समझाई ॥१॥
 जह वरभंड पिंडु तह नाही रचनाहारु तह नाही ।
 जोइण हारो सदा अतीता इह कहीअै किसु माही ॥२॥
 जोही उडे न तोडी तूटे जब लगु होइ विनासी ।
 का को ठाकुरु का को सेवकु को काहू के जासी ॥३॥
 कहु कबीर लिव लागि रही है जहा घसे दिन राती ।
 उथा का मरमु ओही परु जाने ओहु तउ सदा अविनासी ॥४॥

२८

सुरति सिन्नित दुइ कंनी मुँदा परमिति बाहरि खिथा ।

मुँन गुफा सहि आसणु वैसणु कलप विवरजित पंथा ॥

मेरे राजन नै वैरागी जोगी ।

मरत न सोग विअोगी ॥१॥

खंड ब्रह्मंड महि सिंदी मेरा घटश्चा ससु जगु भसमाधारी ।

ताही लागी त्रिपलु पलटीअै धूटे होइ पसारी ॥२॥

मनु पवनु दुइ तूंवा करीहै जुग जुग सारद साजी ।

थिरु भई तंती तूटसि नाही अनहद किंगुरी वाजी ॥३॥

सुनि मन मगन भए है पूरे माइया ढोल न लागी ।

कहु कबीर ता कउ पुनरपि जनमु नही खेनि गहश्चो वैरागी ॥४॥

२६

गज नव गज दस गज दृकीख पुरीआ एक तनाई ।
साठ सूत नव खंड वहतरि पाढ़ लगो अधिकाई ॥
गई बुनावन माहो ।

घर छोदिये जाइ जुलाई ॥१॥

गजी न मिनीश्चै तोलि न तुलीश्चै पाचनु सेर अदाई ।
जौ करि पाचनु बेगि त पावै झार करे घर हाई ॥२॥
दिनकी बैठ खसम की बरकस इह बेला कत आई ।
छूटे कुण्डे भीगे पूरीआ चलिश्चो जुलाहो रीसाई ॥३॥
छोड़ी नली तंतु नही निकसै न तर रही उरझाई ।
छोडि पसारु यहा रहु वपुरी कहु कवीर समझाई ॥४॥

३०

एक जौति एका मिली किंदा होइमहोइ ।
जितु घटि नामु न उपजै फूटि मरै जनु सोइ ।
सावल सुन्दर रामअंथा ।

मेरा मनु लागा तोही ॥१॥
साधु मिलै सिधि पाईश्चै कि यहु जोगु कि भोग ।
दुहु मिलि कारजु उपजै राम नाम संजोगु ॥२॥
लोगु जानै इहु गीतु है इहु तउ व्रहम थीचार ।
जिउ कासी उपदेसु होइ मानस मरती बार ॥३॥
कोई गावै को सुणै हरि नामा चितु लाइ ।
कहु कवीर संसा नही अंति परमराति पाइ ॥४॥

३१

जेरे जतन करत ते हूवे भव सागरु नही तारिशो रे ।
करम धरम करते बहु संजम अहं बुधि मनु जारिशो रे ॥

सास ग्रास को दातो ठाकुर सो किउ मनहु बिसारिओ रे ।
 हीरा लाल अमोलु जनमु है कउडी वदलै हारिओ रे ॥१॥
 त्रिसना त्रिख भूख अभि लागी हिरदै नाहि बीचारिओ रे ।
 उनमन मान हिरिओ मन माही गुर का सबदु न धारिओ रे ॥२॥
 सुआद लुभत इंद्री रस प्रेरिओ मद रस लैत विकारिओ रे
 करम भाग संतन संगाने का सट लोह उधारिओ रे ॥३॥
 धावत जोनि जनम अभि थाके अब दुख करि हम हारिओ रे
 कहि कवीर गुर मिलत महा रसु प्रेम भगति निससतारियो रे ।

३२

कालबूत की हसतनी मन बउरा रे चलतु रचिओ जगदीस ।
 काम सुआइ गज वसि परे मन बउरा रे अंकसु सहिओ सीस ॥
 खिलै वाचु हरि राचु समझु मन बउल रे ।
 निरमै होइ न हरि भजे मन बउरा रे गहिओ न राम जहाजु ॥१॥
 मरकट मुसटी अनाज की मन बउरा रे लीनी हाथु पसारि ।
 छूटन को सहसा परिआ मन बउरा नाचिओ घर घर वारि ॥२॥
 जिउ नलनी सूअटा गहिओ मन बउरा रे माया इहु बिउहारु ।
 जैसा रंगु कसुंभ का मन बउरा रे तिउ पसरिओ पासारु ॥३॥
 नावन कउ तीरथ धने मन बउरा रे पूजन कउ बहु देव ।
 कहु कवीर छूटनु नही मन बउरा रे छूटनु छूटनु हरि की सेव ॥४॥

३३

अगनि न दहै पवनु नही मगने तसकरु नेरि न आवै ।
 राम नाम धनु कारि संचउनी सो धनु कतही न जावै ॥
 हमरा धनु माधउ गोविद धरणी धरु इहै सार धनु कहीअै ।
 जो सुखु ग्रभ गोविंदु की सेवा सो सुखु राजि न लहीअै ॥१॥
 इसु धन कारणि किंव सनकादिक खोजत भए उदासी ।
 मनि सुकुंदु जिहवा नारइनु परे न जम की फासी ॥२॥

निज धनु गिरानु भगति गुर दीनी तासु सुमति मनु लागा ।
जलत अंभ थंभि मनु धावत भरम बंधन भड भागा ॥३॥
कहै कबीर सदन के माते हिरदै देखु बीचारी ।
तुम घरि लाख कोटि अस्व हसती हम घरि एकु मुरारी ॥४॥

३४

जिउ कपि के कर मुसटि चनन की लुबधि न तिश्रागु दहश्यो ।
जो जो करम कीए लालच सिउ ते फिरि गरहि परिश्यो ॥
भगति विनु धिरथे जनमु गहश्यो ।

साध संगति भगवान भजन विनु कही न सच्च रहिश्यो ॥१॥
जिउ उद्दिश्यान कुसम परफुलित किनहि न घाउ लहश्यो ।
तैसे अमत अनेक जोनि महि फिरि फिरि काल हहश्यो ॥२॥
इथा धन जोवन अरु सुत द्वारा पेखन कउ जु दहश्यो ।
तिन ही माहि अटकि जो उरझे हँद्री प्रेरि लहश्यो ॥३॥
अउध अनल तनु तिन को मंदरु चहु दिस ठाठु ठहश्यो ।
कहि कबीर मै सागर तरन कउ मै सतिगुर ओट लहश्यो ॥४॥

३५

पानी मैला माटी गोरी ।
दूस माटी की पुतरी जोरी ॥
मै नाही कहु आहि न मोरा ।
तनु धनु समु रमु गोविद तोरा ॥१॥
दूस माटी महि पवनु समादृश्या ।
मृदा परपनु जोरी चलादृश्या ॥२॥
किनहू लाग्य पांच की जोरी ।
अंत ही थार गार्गिश्या फोरी ॥३॥
कहि कबीर दृक नीय उसारी ।
गिर भहि विनग्नि जाहु अहंकारी ॥४॥

३६

राम जपठ जीश्र श्रैसे श्रैसे ।
धू प्रहिलाद जपिश्रो हरि जैसे ॥
दीन दहश्ताल भरोसे तरे ।
सभु परवाह चडाइथा वेडे ॥१॥
जा तिसु भावै ता हुकमु मनावै ।
इस वेडे कड पारि लघावै ॥२॥
गुर परसादि श्रैसी बुधि समानी ।
चूकि गई फिरि आवनि जानी ॥३॥
कहु कबीर भजु सारिगपानी ।
उरवारि पारि सभ एको दानी ॥४॥

३७

जोनि छाडि जड जग महि आहओ ।
जागत पचन खसमु विसराहयो ॥
जीश्ररा हरि के गुना गाड ॥१॥
गरभ जोनि महि उरध तपु करता ।
तउ जठर अगनि महि रहता ॥२॥
लख चउरासीह जोनि अभि आहओ ।
अब के हूटके ठठरन ठाहओ ॥३॥
कहु कबीर भजु सारिगपानी ।
आवत दीसे जात न जानी ॥४॥

३८

सुरगवासु न बाढ़ीजै ढरीश्रै न नरकि निवासु ॥
दोना है सो होइ है मनहि न कीजै आस ॥
रमझथा गुन गाईश्रै जा के पाइश्रै परम निधानु ॥१॥

किअा जपु किअा तपु संजमो किअा वरतु किअा इसनानु ।
 जब लगु जुगति न जातीथै भाउ भगति भगवान् ॥२॥
 संपै देखि न हरखीथै विपति देखि न रोइ ।
 जिउ संपै तिउ विपति है विधने रचिआ सो होइ ॥३॥
 कहि कवीर अब जानिआ संतन रिदै मझारि ।
 सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥४॥

३६

रे मन तेरो कोइ नहीं खिचि लेइ जिनि भारु ।
 विरख वसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु ॥
 राम रसु पीथा रे जिह रस विसरि गए रस अउर ॥५॥
 अउर सुषु किअा रोइथै जउ आपा थिरु न रहाइ ।
 जो उपज सो विनसि है दुखु करि रोवै बलाइ ॥२॥
 जह की उपजी तह रची पीवत मरदन लाग ।
 कहि कवीर चिति चेतिआ राम सिमरि वैराग ॥३॥

४०

पंथु निष्ठारे कामनी लोधन भरी ले उसासा ।
 उर न भीजै पगु ना खिमै हरि दरसन की आसा ॥
 उहु न फागा कारे ।
 वेति मिल्लाजै अपुने राम पिअरे ॥१॥
 कहि कवीर जीवन पद कार्यान हरि की भगति करीजै ।
 एकु आधार नाम नाराधन रसना रामु रवीजै ॥२॥

४१

आम पाम घन तुम्ही का यिरचा माझ बनारसि शाऊ रे ।
 उआ। का मस्तु देति भोई गुआरनि जो कउ थोड़ि न आउन जाहू रे ॥
 नोहि चारन मनु लागो मारिंगधर सो मिर्त जो बढ भागो रे ॥१॥

संत कबीर

बिंद्रावन मन हरन मनोहर किसन चरावत गाऊ रे ।
जा का ठाकुर तुही सारिंगधर मोहि कबीरा नाऊ रे ॥२॥

४२

बिपल बसव्र केवे है पहिरे किआ वन सधे वासा ।
कहा भइआ नरदेवा धोखे किआ जलि दोरिआ गिआता ॥
जीआ रे जाहिना मैं जानां । अविगतु समझु इआना ।
जत जत देखउ वहुरि न पेखउ संगि माइआ लपटाना ॥१॥
गिआती धिआनी वहु उपरेसी इहु जगु सगलो धंधा ।
कहि कबीर इक राम नाम विनु इआ जगु माइआ अंधा ॥२॥

४३

मन रे छाडहु भरमु प्रगड़ होइ नाचहु इआ माइआ के ढाँडे ।
सुरु की सनमुख रन ते दरपै सती कि सांचे भाँडे ॥
एगमग छाडि रे मन बउरा ।

अव तउ जरे मरे सिधि पाईचै लीनो हाथि संधउरा ॥१॥
काम क्रोध माइआ के लीने इआ विधि जगतु विगूता ।
कहि कबीर राजा राम न छोडउ सगल ऊच ते ऊचा ॥२॥

४४

फुरमानु तेरा सिरै ऊरि फिरि न करत बीचार ।
तुही दरीआ तुही करीआ तुम्है ते निसतार ॥
बंदे बंदरी इकतीआर ।
साहितु रोसु धरउ कि पिशार ॥१॥
नामु तेरा आधारु मेरा जिउ फूलु जई है जारि ।
कहि कबीर गुलामु घर का जीआइ भावै मारि ॥२॥

४५

लख चउरासी जीभ जोनि महि अमत नंदु वहु थाको रे ।
भगति हेति अवतारु छीझो है भाग बढो घपुरा को रे ॥

तुम जु कहत हउ नंद को नंदनु नंद सु नंदनु का को रे ।
धरनि अकासु दसो दिस नाही तब इहु नंदु कहा थो रे ॥१॥
संकटि नही परे जोनि नही आवै नामु निरंजन जा को रे ।
कवीर को सुआसी श्रैसो ठाकुर जा के माई न बापो रे ॥२॥

४६

निंदउ निंदउ मां कउ लोगु निंदउ ।
निंदा जन कउ खरी पिअरी ॥
निंदा वापु निंदा महतारी ।
निंदा होइ त वैकुंठि जाईश्चै ।
नामु पदारथु मनहि वसाँश्चै ॥
रिंदु सुध जउ निंदा होइ ।
हमरं कपरे निंदकु धोइ ॥१॥
निंदा करे तु हमारा मीतु ।
निंदुकु माहि हमारा चीतु ॥
निंदक गो जो निंदा होऐ ।
हमरा जीयनु निंदकु लोरे ॥२॥
निंदा हमरी प्रेम पिअर ।
निंदा हमरा करे उधार ॥
यत कवीर कउ निंदा सार ।
निंदकु या हम उतरे पारि ॥३॥

रागु आसा

१

गुर चरण लागि हम विनवता_० पछत कह जीड पाइआ ।
 कवन काजि जगु उपजै वित्सै कहहु मोहि समझाइआ ॥
 देव करहु दइया मोहि मारगि लावहु जितु भै बंधन त्वै ।
 जनम मरन दुख फेड करम सुख जीश जनम ते छूटै ॥१॥
 माइआ फास बंध नही फारै अरु मन सुनि न लूके ।
 आपा पहु निरवाण न चीनिहआ इन विधि अभिड न चूके ॥२॥
 कही न उपजै उपजी जाएै भाव अभाव विहूणा ।
 उदे असत की मन बुधि नासी तड सदा सहजि लिव लीणा ॥३॥
 जित प्रतिविंदु विंद कउ मिली है उदक कुंभु विगराना ।
 कहु कधीर औसा गुण अमु भागा तड'मनु सुनि समाना ॥४॥

२

गज साड़े तै तै धोतीआ तिहरे पाहनि तग ।
 गली जिन्हा जपमालीआ लोटे हथि निवरा ॥
 थोड हरि के संत न आखीअहि वानारसि के टग ॥
 औसे संत न मो कउ भावहि ।
 ढाला सिड पेडा गटकावहि ॥१॥
 यासन माजि चरावहि ऊपरि काढी धोड जलावहि ।
 यसुधा खोदि करहि दुइ चूल्हे सारे साणस खावहि ॥२॥
 थोड पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु धपरस कहावहि ।
 सदा सदा फिरहि अभिसानी सगल कुटंब दुवावहि ॥३॥
 जिसु को लाइआ तित ही लागा तैसे करम कमावै ।
 कहु कधीर जिसु सतिगुरु भेटे पुनरपि जनमि न आवै ॥४॥

३

यापि दिलासा मेरो कीन्हा ।
 सेज सुखाली मुखि अंग्रितु दीन्हा ॥
 तिसु वाप किड मनहु विसारी ।
 आगे गइथा न बाजी हारी ॥
 मुई मेरी जाई हउ खरा सुखाला ।
 पहिरउ नही दगली लगै न पाला ॥१॥
 बलि तिसु वापै जिनि हउ जाइथा ।
 पंचा ते मेरा संगु चुकाइथा ॥
 पंच मारि पावा तलि दीने ।
 हरि सिसरनि मेरा मनु तनु भीने ॥२॥
 पिता हमारो बड गोङ्गाई ।
 तिमु पिता पहि हउ किउकरि जाई ॥
 कुतिगुर मिले त मारगु दिखाइथा ।
 जगत पिता मेरे मनि भाइथा ॥३॥
 हउ पूतु तंरा तु घापु मेरा ।
 पृष्ठे गाहर दुषा यसेरा ॥
 रह कर्यार जति एको नूमिया ।
 गुर प्रमादि मे रमु विदु मूमिया ॥४॥

४

दूरन् पतरि भरि दुरकट कुरकट हक्कन् पतरि भरि पानी ।
 आमि यामि पंच गोङ्गाया रेठ थीचि नकटदे रानी ॥
 नहरी वी दगमन् याढा तु । किनहि यिंकी वाढी तु ॥१॥
 माहड माहिड लकडी का यापा मगल मारि अठारी ।
 शारदिया वी हउ बहिन भानडी गिनहि घरी निमु चेरी ॥२॥

हमरो भरता बडो विवेकी आपे संतु कहावै ।
ओहु हमारै माथै काह्मु अउरु हमारै निकटि न आवै ॥३॥
नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि कै ढारी ।
कहु कवीर संतन की वैरनि तीनि लोक की पिअरी ॥४॥

५

जंगी जती तपी संनिधासी वहु तीरथ अमना ।
लुंजित सुंजित मोनि जटाधर अंति तज मरना ॥
ता ते सेवीश्वले रामना ।
रसना राम नाम हितु जा कै कहा करै जमना ॥१॥
आगम निरगम जोतिक जानहि वहु वहु विअकरना ।
तंत्र मध्र सभ अउखध जानहि अंति तज मरना ॥२॥
राज भोग अरु छन्द्र सिधासन वहु सुंदरि रमना ।
पान कपूर सुयासक चंदन अंति तज मरना ॥३॥
वेद पुरान संस्कृत सभ खोजे कहू न उवरना ।
कहु कवीर इउ रामहि जंपउ मेटि जनम मरना ॥४॥

६

फीलु रवावी । बलदु पखावज कऊआ ताल बजावै ।
पहिरि चोलना गदहा नाचै भैसा भगति करावै ॥
राजा राम ककरोआ वरे पकाए । किनै धूमन हारे खाए ॥१॥
वैठि सिधु घरि पान लगावै धीस गलउरे लिअवै ।
घरि घरि सुसरी मंगलु रावहि कदूआ संखु बजावै ॥२॥
वंस को पूतु वीश्राहन चलिआ सुइने मंडप छाए ।
रूप कंनिआ सुंदरि वेधी ससै सिधु गुन गाए ॥३॥
कहत कवीर सुनहु रे संतहु कीटी परचतु खाइआ ।
कछुआ कहै अंगार भि लोरउ लूकी सयतु सुनाइआ ॥४॥

७

वहश्चा एकु वहतरि आधारी एको जिसहि हुआरा ।
 नवै खंड की प्रियसी मागे सो जोगी जगि सारा ॥
 औसा जोगी नउ तिधि पावै । तलका वहसु ले गगनि चरावै॥१॥
 खिथा गिथान धिथान करि सूर्झ सबदु तागा मथि घालै ।
 पंच ततु की करि मित्ताणि गुर के सारगि चालै ॥२॥
 दद्दशा फाहरी काहशा करि ध्रुव द्रिसठि की अगनि जलावै ।
 निम का भाड लग रिद अंतरि चहु जुग ताढ़ी लावै ॥३॥
 अभ जोगतण राम नामु है जिसका पिछु पराना ।
 कहु कवीर जे किरण धारे देह सचा नीसाना ॥४॥

८

दिनु तुरक कहा ते आए किनि पृष्ठ राह चलाई ।
 दिल महिमांचि विचार क्यांद भिसत दोजक किनि पाई॥
 बाढ़ी ते कवन बनेग यसानी ।
 पढ़ा गुनत औंसे सभ मारे किन्हौं स्वयरि न जानी ॥१॥
 महनि गंगेदु करि मुंननि कर्गिंचि मै न यदउगा भाई ।
 गड ऐ गुडाए गोदि गुरकु कर्गा आपन ही कहि जाई ॥२॥
 गुंननि चिए गुरकु जे होइगा अडरत का किंचा अरीचे ।
 अमा भरीगी नाहि न छाँदे नाते दिनु हो रहीचे ॥३॥
 द्याइ अंग राम भजु चटरे गुनम करत है भागी ।
 उंगे रसीदेह राज की नुगक गंड पचि हारी ॥४॥

९

पारे नई मार्गानी पानी जोड ।
 दिलु अडरे अह दानी नहीं गो पादन निराजीड ॥
 दूरी जागी है एड । गरिधु जागना है एड ॥५॥

ब्रह्मु पाती विसनु डारी फूल संकर देउ ।
 तीनि देव प्रतखि तोरहि करहि किस की सेउ ॥२॥
 पाखान गढि कै मूरति कीन्ही दे कै छाती पाड ।
 जे एह मूरति साची है तड गडणहारे खाड ॥३॥
 भातु पहिति अरु लापसी करकरा कालारु ।
 भोगनहारे भोगिआ इसु मूरति के मुख छारु ॥४॥
 मालिनि भूली जगु भुलाना हम भुलाने नाहि ।
 कहु कधीर हम राखे क्रिपा करि हरि राह ॥५॥

१०

बारह घरस बालपन बीते बीस घरस कहु तपु न कीओ ।
 तीस घरस कहु देव न पूजा फिरि पहुताना विरधि भइओ ॥
 मेरी मेरी करते जनमु गइओ ।
 साइर सोखि भुजं बलइओ ॥१॥

सूके सखरि पालि बंधावै लूणे खेति हथ चारि करै ।
 आइओ चोरु तुरंतह ले गइओ मेरी राखत मुगाँ फिरै ॥२॥
 चरन सीसु कर कंपन लागे नैनी नीरु असार वहै ।
 जिहवा वचनु सुधु नही निकसै तब रे धरम की आस करै ॥३॥
 हरि जीउ क्रिपा करै लिव नावै लाहा हरि हरि नामु लीओ
 गुर परसादी हरि धनु पाइओ अंते चल दिशा नालि चलिओ ॥४॥
 कहत कबीर सुनहु रे संतहु अनु धनु कछूचै लै न गइओ ।
 आई तलब गोपालराइ को माइशा संदर छोडि चलिओ ॥५॥

११

काहू दीन्हे पाट पटंघर काहू पलघ निवारा ।
 काहू गरी गोदरी नाही काहू खान परारा ॥
 अहिरख चाढु न कीजै रे मन ।
 सुक्रितु करि करि लीजै रे मन ॥६॥

संत कवीर

कुम्हारै एक जु माटी गूँधी वहु विधि बानी लाई ।
 काहू महि मोती मुकताहल काहू विश्वाधि लगाई ॥२॥
 सूमहि धनु राखन कउ दीशा मुगधु कहै धनु मेरा ।
 जम का ढंडु मूँढ महि लागे खिन महि करै निवेरा ॥३॥
 हरि जनु ऊतमु भगतु सदावै आगिआ मनि सुखु पाई ।
 जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा मनि वक्षाई ॥४॥
 कहै कबीर सुनहु रे संतहु मरी मेरी मूठी ।
 चिरगट फारि चटारा लै गह्रो तरी तागरी छूथी ॥५॥

१२

हम मसकीन खुदाई बंदे तुम राजसु मनि भावै ।
 अलह अबलि दीन को साहितु जोरु नही फुरमावै ॥
 काजी बोलिआ वनि नही आवै ॥१॥
 रोजा धरै निवाज गुजारै कलमा भिसति न होई ।
 सतरि कावा घट ही भीतरि जे करि जानै कोई ॥२॥
 निवाज सोई जो निशाउ विचारै कलमा अकलहि जानै ।
 पाचहु मुसि मुसला विद्धावै तव तड दीनु पछानै ॥३॥
 खसमु पछानि तरस करि जीथ महि मारि मणी करि फीकी ।
 आपु जनाह अवर कउ जानै तव होइ भिसत सरीकी ॥४॥
 माटी एक भेल धरि नाना ता महि वहसु पछाना ॥
 कहै कबीरा भिसति छोडिकरि दोजक सिड मनु माना ॥५॥

१३

गंगन नगरि इद वूँद न वरखै नानु कहा जु समाना ।
 पारवहम परमेसुर माधो परम हंसु ले सिधाना ॥
 यावा बोलरे चे कहा गए । देही के संगि रहवे ।
 सुरति माहि जो निरते करते कथा वारता कहने ॥१॥

बजावन हारो कहा गड्ढो जिनि इहु मंदरु कीना ।
 साखी सबदु सुरति नही उपजै खिचि तेजु सभु लीना ॥२॥
 खवनन विकल भए संग तेरे इंद्री का बलु थाका ।
 चरन रहे कर ढरकि परे है सुखहु न निकसै बाता ॥३॥
 थुके पंच दूत सभ तसकर आप आपणै अमरे ।
 थाका मनु कुंचर उरु थाका तेजु सूतु धरि रमते ॥४॥
 मिरतक भए दसै वंक छुटै मित्र भाई सभ छोरे ।
 कहत कवीरा जो हरि धियावै जीवत वंधन तेरे ॥५॥

१४

सरपनी ते ऊपरि नही वलीआ ।
 जिनि ब्रह्मा विसनु महादेउ छुलीआ ॥
 मारु मारु खपनी निरमल जलि पैठी ।
 जिनि विभवणु डसीश्वले गुर प्रसादि ढीठी ॥१॥
 खपनी खपनी किया कहउ भाई ।
 जिनि सात्तु पछानिआ तिनि खपनी खाई ॥२॥
 खपनी ते आन छुछ नही अबरा ।
 खपनी जीती कहा करै जमरा ॥३॥
 इह खपनी ता की कीती होई ।
 बलु अबलु किशा इस ते होई ॥४॥
 इह बसती ता बसत सरीरा ।
 गुर प्रसादि सहजि तरे कवीरा ॥५॥

१५

कहा सुआन कउ सिन्हिति सुनाए ।
 कहा साकत परि हरि गुन गाए ॥
 राम राम राम रमे रमि रहीअै ।
 साकत सिग भूलि नही कहीअै ॥६॥

संत कवीर

कउआ कहा कपूर चराए ।
 कह विसीअर कड दूधु पीआए ॥२॥
 सति संगति मिलि विवेक बुधि होई ।
 पारसु परसि लोहा कंचनु सोई ॥३॥
 साकहु सुआनु सभु करे कहाइआ ।
 जो धुरि लिखिआ सो करम कमाइआ ॥४॥
 अंत्रितु लै लै नीभु सिचाई ।
 कहत कवीर उआ को सहजु न जाई ॥

१६

लंका सा कोहु संसुद सी खाई ।
 तिह रावन घर खवरि न पाई ॥
 किया भागड किछु थिह न रहाई ।
 देखत नैन चलिओ जग जाई ॥१॥
 इक लघु पूत सधा लघु नाती ।
 तिह रावन घर दीआ न बाती ॥२॥
 चंडु सूख्ज जा के तपत रसोई ।
 वैसंतरु जा के कपरे धोई ॥३॥
 गुरमति रामै नामि वसाई ।
 असधिह रहे न कतहूँ जाई ॥४॥
 कहत कवीर सुनहु रे लोई ।
 राम नाम विनु सुकति न होई ॥५॥

१७

पहिला पृथु पिछे री माई ।
 गुड लागो चेलं की पाई ॥
 एक अर्चंभड सुनहु हुम भाई ।
 देखत मियु चरायत गाई ॥६॥

जल की महुबी तरवरि विआई ।
 देखत कुतरा लै गई विलाई ॥२॥
 तलै रे बैसा उपरि सूला ।
 तिस कै पेड़ लगे फल फूला ॥३॥
 घोरे चरि भैस चरावन जाई ।
 बाहरि बैलु गोनि घरि आई ॥४॥
 कहत कवीर जु इस पद वूझै ।
 राम रभत तिसु सभु किछु सूझै ॥५॥

१७

बिदु ते जिनि पिंड कीआ अगानि कुण्ड रहाइथा ।
 दस मास माता उदरि राखिथा बहुरि लागी माइथा ॥
 प्रानी कहे मउ लोभि लागे रतन जनमु खोइथा ।
 पूरब जनमि करम भूमि बीजु नाही बोइथा ॥१॥
 बारकि ते विरधि भइथा होना सो होइथा ।
 जा जमु आइ फोट पकरै तवहि काहे रोइथा ॥२॥
 जीवनै की आस करहि जमु निहारै सासा ।
 बाजीगरी संसार कवीग चेति ढालि पासा ॥३॥

१८

तनु रैनी मनु उनरपि करिहउ पाचड तत घराती ।
 राम राइ सिउ भावरि लैहउ आतम तिह रंग राती ॥
 गाड गाड री दुलहनी मंगल चारा ।
 मेरे धिह आए राजा राम भतारा ॥१॥
 नाभि कमल महि येदी रचिले वहस गिष्ठान उचारा ।
 राम राइ सो दूलहु पाइओ अस घड भाग हमारा ॥२॥
 सुरि नर मुनि जन कउतक आए कोटितेक्षिसठ जानाँ ।
 कहि कवीर मोहि विश्वाहि चले हैं पुरख एक भगवाना ॥३॥

रागु सोरठि

१

चुत पृजि पृजि हिंदू मूष तुरक मूए सिरु नाई ।
ओइ ले जारे ओइले गाडे तेरी गति दूहू न पाई ॥

सन रे संसारु अंध गहेरा ।

चहु दिस पसरिथो है जम जेवरा ॥१॥

कवित पडे पड़ि कविता मूष कपड़ केदारै जाई ।
जटा धारि धारि जोगी मूष तेरी गति इनहि न पाई ॥२॥
दरबु संचि संचि राजे मूष गडि ले कंचन भारी ।
वेद्र पडे पड़ि पंडित मूष रूप देखि देखि नारी ॥३॥
राम नाम विनु सभे विगूते देखहु निरखि सरीरा ।
हरि के नाम विनु किनि गाति पाई कहि उपदेसु कवीरा ॥४॥

२

जब जरीअै तब होइ भसम तनु रहै किरम दल खाई ।

काची गागरि नीरु परतु है हथा तन की हूहै बडाई ।

काहै भाईआ फिरतौ फूलिआ फूलिआ ।

जब दस मास उरध मुख रहता सो दिनु कैसे भूलिआ ॥१॥

जिड मधु माल्ही तिड सठोरिरसु जोरि जोरि धनु कीआ ।

मरती बार लेहु लेहु करीअै भ्रु रहन किड दीआ ॥२॥

देहुरी लड वरी नारि संग भई आगे सजन सुहेला ।

मरघटलड मधु लागु कुट्टु भहथो आगे हंसु अकेला ॥३॥

कहनु कथीर मुनहु रं प्रानी परे काल ग्रस कूथा ।

मूर्ठी माल्हा अपु दंथाहथा जिड नजर्ना अमि चूथा ॥४॥

३

ब्रेद पुरान सभै मत सुनि कै करी करम की आसा ।
 काल ग्रसत सभ लोग मिथ्याने उठि पंडत पै चले निरासा॥
 मन रे सरिथो न एकै काजा ।
 भजिथो न रघुपति राजा ॥१॥

यनखंड जाइ जोगु तपु कीनो कंद मूलु चुनि खाइया ।
 नादी बेदी सबदी सोनी जम के पटे लिखाइआ ॥२॥
 भगति नारदी रिंदे न आई काचि कूछि तनु दीना ।
 राग रागिनी डिंभ होइ वैठा उनि हरि पहि किअलीना ॥३॥
 परिथो कालु सभै जग ऊपर माहि लिखे अम गिअती ।
 कहु कवीर जन भए खालासे श्रेम भगति जिह जानी ॥४॥

जागतु सोइआ जनमु रावाइआ ।
 मालु धनु जोरिआ भइआ पराइआ ॥
 कहु कवीर तेई नर भूले ।
 खसमु यिसारि माटी संगि रूले ॥४॥

३

थाके तैन च्वन सुनि थाके थाकी सुंदरि काइआ ।
 जरा हाक दी सभ मति थाकी एक न थाकसि माइआ ॥
 वावरे तै गिअन बीचारु न पाइआ ।
 विरथा जनमु रावाइआ ॥१॥
 तब लगु प्रानी तिसे सरेवहु जब लगु घट महि सासा ।
 ले घटु जाइ त भाउ न जासी हरि के चरन निवासा ॥२॥
 जिस कउ सबदु वसावै श्रंतरि चूकै तिसहि पिअसा ।
 हुकमै दूसै चउपडि खेलै मनु जिणि ढाले पासा ॥३॥
 जो जन जानि भजहि अथिगत कउ तिन का कछु न नासा ।
 कहु कवीर ते जन कथहु न हारहि ढालि जु जानहि पासा ॥४॥

४

एकु कोडु पंच सिकदारा पंचे मागहि हाला ।
 जिसी नाही मै किसी की बोह औसा देनु दुखाला ॥
 हरि के लोगा मो कउ नीति डसे पटवारी ।
 ऊपरि भुजा करि मै गुर पहि पुकारिआ तिनि हउ लीआ उधारी ॥१॥
 नउ ढाढी दस मुंसफ धावहि रङ्गति वसन न देही ।
 ढोरी पूरी मापहि नाही बहु विसटाला लेही ॥२॥
 बहतरिघरि इकु पुरखु समाइआ उनि दीआ नामु लिखाई ।
 धरमराय का दफतर सोधिआ धाकी रिजम न काई ॥३॥
 संता कउ मति कोई निंदहु संत रामु है एको ।
 कहु कवीर मै सो गुरु पाइआ जा का नाड विदेको ॥४॥

मोहि वैरागु भइओ ।

इहु जीउ आइ कहा गइओ ॥१॥

पंज ततु मिलि काइआ कीनी ततु कहा ते कीनु रे ।

करम वध तुम जोउ कहत हौ करमहि किनि जीउ दीनु रे ॥२॥

हरि महि तनु है तन महि हरि है सख्त निरंतरि सोइ रे ।

कहि कबीर राम रामु न छोडउ सहजे होइ सु होइ रे ॥३॥

४

भुजा वांधि मिला करि डारिओ ।

हसती क्रोपि सूंड महि मारिओ ॥

हसति भागि कै चीका मारै ।

इआ मूरति कै हउ बलिहारै ॥

आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु ।

काजी घकियो हसती तोरु ॥१॥

रे महावत तुझु डारउ काटि ।

इसहि तुरावहु धालहु साटि ॥

हसति न तोरे धरे धिनानु ।

वाकै रिदं वसै भगवानु ॥२॥

किआ अपराधु संत है कीन्हा ।

वांधि पोटि कुंजा कठ ढीना ॥

कुंजरु पोट लै लै नमनकारै ।

घूमी नहीं काजी अंधिआरै ॥३॥

तीनि घार पतीआ भरि लीना ।

मन कठोरु अजहू न पतीना ॥

कहि कबीर इमरा गोधिंदु ।

चउथे पद महि जन की जिंदु ॥४॥

५

ना इहु मानसु ना इहु देहु ।
 ना इहु जती कहावै सेठ ॥
 ना इहु जोगी ना अवधृता ।
 ना इसु माड़ न काहु पूता ॥
 इथा मंद्र माहि कौन घसाई ।
 ता का अंतु न कोऊ पाई ॥१॥
 ना इहु गिरही ना ओढासी ।
 ना इहु राज न भीख संगासी ॥
 ना इहु पिछु न रक्खु राती ।
 ना इहु ब्रह्मनु न इहु खाती ॥२॥
 ना इहु तपा कहावै सेखु ।
 ना इहु जीर्य न मरता देखु ॥
 इसु मरते कठ जे कोऊ रोवै ।
 जो रोवै सोई पति लोवै ॥३॥
 गुर प्रसादि मै ढगरो पाइथा ।
 जीवन मरनु दोऊ मिटवाइथा ॥
 कहु कर्वार इहु राम की अंसु ।
 जस कागद पर मिटे न मंसु ॥४॥

६

लड़ तांगे निखुटी पानि ।
 दुश्शार ऊपरि किलकावहि कान ॥
 कूच विचारे कूपु फाल ।
 इथा सुंडीथा मिर चटियो काल ॥
 इहु सुंडीथा यगलो द्रवु खोई ।
 आवत जात नाक सर होई ॥५॥

तुरी नारि की छोड़ी वाता ।
 राम नाम वा का मनु राता ॥
 लरकी लरिकन खैबो नाहि ।
 सुंडीआ अनदिनु धापे जाहि ॥२॥
 इक हुइ मंदिर इक हुइ बाट ।
 हम कउ साथरु उन्ह कउ खाट ॥
 मूँड पलोसि कमर वधि पोथी ।
 हम कउ चावनु ठन कउ रोटी ॥३॥
 सुंडीआ सुंडीया हुए एक ।
 इह सुंडीआ बूढ़त की टेक ।
 सुनि श्रंघली लोई वे पीर ।
 इन्ह सुंडीथन भजि सरनि कवीर ॥४॥

रागु रामकली

१

काइआ कलालनि लाहनि मेलउ गुर का सबतु गुडु कीनु रे ।
 त्रिसना कासु क्रोधु मद मतसर काटि काटि कसु दीनु रे ॥
 कोई है रे संतु सहज सुख अंतरि जाकउ जपु त्पु देउ दलाली रे ।
 एक वृंद भरि तनु मनु देवउ जो महु देह कलाली रे ॥१॥
 भवन चतुरदस भाठी कीन्ही ब्रह्म अगनि तनि जारी रे ।
 मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचनहारी रे ॥२॥
 तीरथ वरत नेम सुचि संजम रवि सखि गहनै देउ रे ।
 सुरति पिअाल सुधा रसु अंत्रितु एहु महा रसु पेड रे ॥३॥
 निम्फर धार चुअँ अति निरमल इह रस मनूआ रातो रे ।
 कहि कवीर सगले मद छूछे इहै महा रसु साचो रे ॥४॥

२

गुडु करि गिआनु धिआनु करि सहूआ

भड भाठी मन धारा ।

सुखमन नारी सहज समानी पीचै पीचनहारा ॥

अउधू मेरा मनु मतवारा ।

उन्नमद चढा मदन रसु चाखिआ त्रिभवन भहया उजि आरा ॥१॥

दुइ पुर जोरि रसाई भाठी पीउ महा रसु भारी ।

कासु क्रोधु दुइ कीए जलेता छूटि गई संसारी ॥२॥

ग्रगट प्रगास गिआन गुर गंमित सतिगुर से सुधि पाई ।

दासु कवीर तासु मद माता उचकि न कबहू जाई ॥३॥

३

तूं मेरो मेरु परवतु सुआसी ओट 'गही मै तेरी ।

ना हुम ढोलहु ना हम गिरते रखि 'लीनी 'हरि मेरी ॥

अब तब जब कब तुही तुही ।
 हम तुअ परसाद सुखी सदही ॥
 तोरे भरोसे मगहर वसियो मेरे तन की तपति बुझाई ।
 पहिले दरसनु मगहर पाइयो फुनि कासी बसे आई ॥२॥
 जैसा मगहरु तैसी कासी हम एके करि जानी ।
 हम निरधन जिट इहु धनु पाइआ मरते फूटि गुमानी ॥३॥
 करै गुमान चुभहि तिसु सूला को काढन कड नाही ।
 अजै सुचोभ कड विलल विलाते नरके घोर पचाही ॥४॥
 कवनु नरकु किअ सुरगु विचारा संतन दोऊ राई ।
 हम काहू की काणि न कढते अपने गुर परसाई ॥५॥
 अब तड जाइ चढे सिंघाक्षनि मिले है सारिंगपानी ।
 राम कवीरा एक भए है कोइ न सके पछानी ॥६॥

४

संता मानउ दूता डानउ इहु कुट्चारी मेरी ।
 दिवस रैनि तेरे पाउ पलोउ उ केस चवर करि फेरि ॥
 हम फूकर तेरे द्रवारि ।
 भउकहि आगे बदनु पसारि ॥१॥
 पूर्य जनम हम तुम्हरे सेवक अब तड मिठिआ न जाई ।
 तेरे दुआरे धुनि सहज की साथै मेरे दगाई ॥२॥
 दागे होहि सु रन महि जूम्हि विनु दागे भगि जाई ।
 साधु होइ सु भगति पदानै हरि लप् खजानै पाई ॥३॥
 कोठरे महि कोठरी परम कोठी धीचारि ।
 गुर दीनी बहनु कवीर कड लेवड बहनु रमारि ॥४॥
 कवीर दीइ संसार कड लीनी जिसु ममतकि भागु ।
 शंभ्रित रसु जिनि पाइआ थिल ता का सोहागु ॥५॥

५

जिह मुख बेदु गाढ़ी निकसै सो किउ बहमनु विसर करै ।

जा कै पाइ जगतु सभु लागे सो किउ पंछितु हरि न कहै ॥

काहे मेरे वाम्हन हरि न कहहि ।

रामु न बोलहि पांडे दोजकु भरहि ॥१॥

आपनु ऊच नीन घरि भोजनु हठे करम करि उद्धर भरहि ।

चउदस अमावस रचि रचि मांगहि कर दीपकु लै शृण परहि ॥२॥

तूं वहमनु मै कासी क जुलहा मुहितोहि वरावरी कैसे कै वनहि ।

हमरे राम नाम कहि उवरे बेदु भरोसे पांडे दूधि मरहि ॥३॥

६

तरवरु एकु अनंत डार साखा पुहप पत्र रस भरीआ ।

इह अंग्रित की बाढ़ी है रे तिनि हरि पूरे करीआ ॥

जानी जानी रे राजा राम की कहानी ।

अंतरि जोति राम परगासा गुरमुखि विरलै जानी ॥१॥

भवरु एकु पुहप रस बीधा वारह ले उरधरिआ ।

सोरह मधे पचन झकोरिआ आकासे फरु फरिआ ॥२॥

सहज सुनि इकु विरवा उपजिआ धरती जलहरु सोखिआ ।

कहि कबीर हउ ता का सेवकु जिनि इहु विरवा देखिआ ॥३॥

७

मुंदा मोनि दइआ करि झोली पत्र का करहु बीचारु रे ।

खिंथा इहु तनु सीशउ अपना नामु करउ आधारु रे ॥

ऐसा जोगु कमावहु जोगी ।

जप जप संजमु गुरमुखि भोगी ॥१॥

दुधि विभूति चढावउ अपुनी सिंगी सुरति मिलाई ।

करि वैरागु फिरउ तनि नगरी मन की किंगुरी बजाई ॥२॥

पंच ततु लै हिरदै राखहु रहै निरालम ताड़ी ।
कहतु कबीर सुनहु रे संतहु धरमु दइआ करि बाड़ी ॥३॥

C

कवन काज सिरजे जग भीतरि जनमि कवन फलु पाइआ ।
भव निधि तरन तारन चिंतामनि इक निमख न इहु मनु लाइआ ॥
गोविंद हम ऐसे अपराधी ।
जिनि प्रभि जीउ पिंडु था दीआ तिस की भाड भगति नही साधी ॥१॥
परधन परतन परती निंदा पर अपवाहु न छूटे ।
आवा गवनु होत है कुनि कुनि इहु परसंगु लूटे ॥२॥
जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमख न कीनो मै केरा ।
कंपट चोर दृत मतवारे तिन संगि सदा वसेरा ॥३॥
काम क्षोध माइआ मदं मतसर ए संपे भो माही ।
दहशा धरमु अरु गुर की सेवा ए सुपनंतरि नाही ॥४॥
दीन दइआल किपाल दमोदर भगति बछल भै हारी ।
कहत कबीर भीर जन राखहु हरि सेवा करउ तुग्हारी ॥५॥

रागु केदारा

१

उसतति निंदा दोऊ विवरजित तजहु मानु अभिमाना ।
लोहा कंचन सम करि जानहि ते मूरति भगवाना ॥
तेरा जनु एकु आधु कोइ ।

कासु कोधु लोभु मोहु विवरजित हरि पटु चीन्है सोइ ॥१॥
रज गुण तम गुण सत गुण कहीअै एह तेरी सभ माइथा ।
चउथे पद कड जो नरु चीन्है तिन ही परस पटु पाइथा ॥२॥
तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ।
त्रिसना श्रवु माइथा असु चूका चितवत आतम रामा ॥३॥
जिह मंदरि दीपकु परगासिथा अंधकारु तह नासा ।
निरभड पूरि रहे असु भागा कहि कवीर जन दासा ॥४॥

२

किनही वनजिथा कांसी तांवा किन ही लउग सुपारी ।
संतहु वनजिथा नासु गोविद का थ्रैसी खेप हसारी ॥

हरि के नाम के विथापारी ।

हीरा हाथि चडिथा निरमोलकु छूटि गई संसारी ॥१॥
साचे लाए तड सच लागे साचे के विडहारी ।
साची वस्तु के भार चलाए पहुचे जाइ भंडारी ॥२॥
आपहि रतन जवाहर मानिक आपै है पासारी ।
आपै दहदिस आप चलावै निहचलु है विथापारी ॥३॥
मनु फरि वैलु सुरति करि पैडा गिथान गोनि भरि ढारी ।
कहतु कवीरु सुनहु रे संतहु निवही खेप हसारी ॥४॥

३

श्री कलवारि गवारि भूढ़ मति उलटो पवनु फिरावउ ।
मनु मतवार मेर सर भाडी अंग्रित धार चुआवउ ॥
बोलहु भईआ रास की दुहाई ।

पीचहु संत सदा मति दुरलभ सहजे पिआस बुझाई ॥१॥
भै चिचि भाड भाइ कोड वूफहि हरि रसु पावै भाई ।
जेते घट अंग्रितु सभ ही महि भावै तिसहि पीआ ॥२॥
नागरी एकै नउ दरवाजे धावतु वरजि रहाई ।
यिकुटी छूटे दसवा दल खलहै ता मनु खीवा भाई ॥३॥
अभै पद पूर ताप तिह नालं कह कवीर बीचारी ।
उदट चलते इहु मदु पाइआ जैसे खोद खुमारी ॥४॥

४

काम क्रोध विसना के लीने नति नही एकै जानी ।
फूटो आखै कछू न सूर्खै वूडि सूए विनु पानी ॥
चलत कत टेडे टेडे टेडे

असति चरम विसदा के मूंदे दुरसंध ही के देढे ॥१॥
राम न जपहु कवन भ्रम भूले तुम ते कालु न दूरे ।
अनिक जतन करि इह तनु राखहु रहै अवसथा पूरे ॥२॥
आपन कीआ कछू न होवै किआ को करै परानी ।
ता तिसु भावै सतिगुर भेटै एको नामु वसानी ॥३॥
बलूआ के घरुआ सहि वसते फुलवत देह अहश्वाने ।
कहु कवीर जिह रामु न चेतिथो वूडे कहुतु सिश्वाने ॥४॥

५

टेढी पारा टेढे चले लागे वीरे खान ।
भाड भगति सिड काज न अबूथै मेरो कामु दीवान ॥

गमु दिमारियो है अभिग्रान ।

कनिक कामनी गढ़ा मुंदरी पेहि पेहि गनु गानि ॥१॥
त्वालच कृठ दिलार मदासद इद दिल आडन दिलनि ।
कहि कवीर श्रंत दी पेर आद गामी गादु निरानि ॥२॥

३.

चारि दिन अपनी नउबति चले बजाए ।

इतनकु रखीया गढ़ीया गटीया गंगि न फहु ती जाए ॥

धेहरी धैहरी मिलरी रोधै दुआरै लड़ संग जाए ।

मरएट लगि सभु लोगु छटुंगु निलि हंसु इकेला जाए ॥३॥
वै सुत वै वित वै पुर पायन बहुरि न देखै जाए ।

कष्टु कवीर राम की न सिमरहु जनसु घकारथ जाए ॥४॥



रागु भैरव

१

। ते भगति कमाई ।
 । मानस देही पाई ॥
 । कठ सिमरहि देव ।
 भजु हरि की सेव ॥
 विंद भूलि मत जाहु ।
 जनम का एही लाहु ॥१॥
 जरा रोगु नही आइआ ।
 कालि असी नही काइआ ॥
 दिक्कल भई नही बानी ।
 हि रे मन सारिगपानी ॥२॥
 मजसि भजसि कथ भाई ।
 रंतु न भजिआ जाई ॥
 उ करहि सोई अब सारु ।
 छताहु न पावहु पारु ॥३॥
 वकु जो लाइआ सेव ।
 हि पाए निरंजन देव ॥
 लि ताकै खुलहे कपाट ।
 न आवै जोनी वाट ॥४॥
 ॥ अउसरु इह तेरी वार ।
 रीतरि तू देखु घिचारि ॥
 कवीरु जीति कै हारि ।
 घि कद्दिओ पुकारिपुकारि ॥५॥

२

सिंघ की पुरी बसै दुधि सारु ।
 तह तुम्ह मिलि के करहु चिचारु ॥
 दंत ऊत की सोकी परै ।
 कडन करम मेरा करि करि मरै ॥
 निजपद ऊपरि लागो धिआनु ।
 राजा रास नसु मोरा व्रहम गिआनु ॥१॥
 मूल दुआरै धंगिआ धंधु ।
 रवि ऊपर गहि राखिआ चंदु ॥
 पछम दुआरै सूरजु तवै ।
 मेर ढंड सिर ऊपरि बसै ॥२॥
 पसचम दुआरे की सिल धोड़ ।
 तिह सिल ऊपरि खिड़की अउर ॥
 खिड़की ऊपरि दसवा दुआरु ।
 कहि कवीरता का अंतु न पारु ॥३॥

३

सो मुलां जो मुन सिड लरै ।
 गुर उपदेसि काल सिड जुरै ॥
 काल पुरख का मरदै मानु ।
 तिसु मुला कड सदा सलामु ॥
 है हजूरि कत दूरि बतावहु ।
 ढंदर बाघहु सुंदर पाघहु ॥१॥
 काजी सों जु काहथा धीचारै ।
 काहथा की अगति व्रहमु परजारै ॥
 मुपनै विंदु न दंड मरना ।
 तिसु काजी कड जरा न मरना ॥२॥

संत कवीर

सो सुरतानु ज्ञ दुह सर तानै ।
 बाहरि जाता भीतरि आनै ॥
 गगन भंडल महि लसकरु करै ।
 सो सुरतानु छनु सिरि धरै ॥३..
 जोगी गोरखु गोरखु करै ।
 हिंदू राम नाम उचरै ॥
 मुसलमान का एकु खुदाइ ।
 कवीर का सुआसी रहिआ समाइ ॥४॥

४

जो पाथर कउ कहवे देव ।
 ता की विरथा होवै सेव ॥
 जो पाथर की पाँझे पाइ ।
 तिस की धाल अर्जाई जाइ ॥
 ठाकुरु हमरा सद घोलंता ।
 सरब जीआ कउ प्रभु दानु देता ॥१॥
 अंतरि डेड न जानै अंतु ।
 अम का सोहिआ पावै फंधु ॥
 ना पाथरु घोलै ना किंकु देइ ।
 फोकट करम निहफल है सेव ॥२॥
 जे मिरतक कउ चंदनु चढ़ावै ।
 उसरे कहु कवन फल पावै ॥
 जे मिरतक कउ विसेटा माहि रुजाई ।
 तां मिरतक का किआ घटि जाई ॥३॥
 कहत कवीर हउ कहउ पुकारि ।
 समकि देखु साकत गावार ॥

दूजै भाइ बहुतु घर घाले ।
राम भगत है सदा सुखाले ॥४॥

५

जल महि मीन माहशा के वेधे ।
दीपक पतंग माहशा के छेदे ॥
काम माहशा कुंचर कउ विश्रापे ।
भुहश्रंगम श्रिंग माहशा महि खापे ॥
माहशा औसी मोहनी भाई ।
जेते जीश तेते उहकाई ॥१॥
पंखी निग माहशा महि रत्ते ।
साकर माखी अधिक संतापे ।
तुरे उसट माहशा महि भेला ।
सिव चउरासीह माहशा महि खेला ॥२॥
छिथ जती माहशा के बंदा ।
नवै नाथ सूरज अरु चंदा ॥
तपे रखीसर माहशा महि सूता ।
माहशा महि कालु अरु पंच दूता ॥३॥
सुआन सिआल माहशा महि राता ।
धंतर चीते अरु सिंघाता ॥
माजार गाडर अरु लूवरा ।
विरख मूल माहशा महि परा ॥४॥
माहशा अंतरि भीने देव ।
सागर हंद्रा अरु घरतेव ॥
कहि कवीर जिनु उदरु तिनु माहशा ।
तय द्यु जय साथू पाहशा ॥५॥

६

जब लगु मेरी मेरी करे ।
 तब लगु काजु एकु नहीं सरै ॥
 जब मेरी मेरी मिटि जाइ ।
 तब प्रभ काजु सवारहि आइ ॥
 औसा गियानु विचारु मना ।
 हरि की न सिमरहु दुख भंजना ॥१॥
 जब लग सिंधु रहै घन माहि ।
 तब लगु बनु फूलै ही नाहि ॥
 जब ही सिश्चारु सिंध कड खाइ ।
 फूलि रही सरकी घनराइ ॥२॥
 जीतो वूढ़ै हारो तिरै ।
 गुर परसादी पारि उतरै ॥
 दासु कवीरु कहै समझाइ ।
 केवल राम रहहु लिव लाइ ॥३॥

७

सतरि सैइ सजार है जा के ।
 सवा लाखु पैकावर ता के ॥
 सेस जु कहीश्रहि कोटि अठासी ।
 छपन कोटि जाके खेल खासी ॥
 मो गरीय की को गुजरावै ।
 मजलसि दूरि महलु को पावै ॥१॥
 तेतीस करोड़ी है खेलखाना ।
 चउरासी लख फिरै दिवानां ॥
 याबा आदम कड किन्हु नदरि दिखाई ।
 उन भी भिसति घनेरी पाई ॥२॥

दिल खलहलु जा कै जरदरू बानी ।
 छोडि कतेव करै सैतानी ॥
 दुनिश्चा दोसु रोसु है लोई ।
 अपना कीआ पावै सो ॥३॥
 तुम दाते हम सदा भिखारी ।
 देउ जवाबु होइ बजगारी ॥
 दासु कवीरु तेरी पनह समानां ।
 भिस्तु नजीकि राखु रहमाना ॥४॥

८

सभु कोई चलन कहत है ऊहाँ ।
 ना जानउ वैकुंठ है कहाँ ॥
 आप आप का मरसु न जानाँ ।
 बातन ही वैकुंठ बत्तानां ॥१॥
 जब लगु मन वैकुंठ की आस ।
 तब लगु नाही चरन निवास ॥२॥
 खाई कोटु न परलपगारा ।
 ना जानउ वैकुंठ दुआरा ॥३॥
 कहि कवीर अब कहीत्रै काहि ।
 साध संगति वैकुंठे आहि ॥४॥

९

किड लीजै गदु बंका भाई ।

दोवर कोट अरु तेवर खाई ॥

पौच पचीस सोह मद मनवर आडी परवल माहथा ।
 जन गरीब को जारु न पहुँच कहाँ करउ रघुराहथा ॥१॥
 कासु किवारी दुन्ह मुखु दरवानी पापु पुंनु दरवाजा ।
 क्रोधु प्रधानु महा बडु दुंदर तह मनु मावासी राजा ॥२॥

स्वाद सनाह टोपु ममता को कुबुधि कमान चदाई ।
 तिसना तीर रहे घट भीतरि इड गदु लीश्रो न जाई ॥३॥
 प्रेम पलीता सुरति हवाई गोला गिअनु चलाइया ।
 ब्रह्मि अरानि सहजे परजाली एकहि चोट सिमाइआ ॥४॥
 सतु संतोखु लै लरने लागा तोरे दुइ दरवाजा ।
 साध संगति अरुगुर की क्रिपा ते पकरिआं गढ़ को राजा ॥५॥
 भगवत भीरि सकति सिरमन की कटी काल भै फासी ।
 दासु कमीरु चदिश्रो गढ़ ऊपरि राजु लीश्रो अधनासी ॥६॥

१०

रांग गुसाइनि गहिर रांभीर ।
 जंजीर वौंधि करि खरे कबीर ॥
 मनु न डिगै तनु काहे कउ ढराइ ।
 चरन कमल चितु रहिओ समाइ ॥१॥
 रांगा की लहरि मेरी दुटी जंजीर ।
 ब्रिगद्वाला पर वैठे कबीर ॥२॥
 कहि कबीर कोऊ संग न साथ ।
 जल थल राखन है रघुनाथ ॥३॥

११

अगम द्रुगम राहि रचिओ वास ।
 जा महि जोति करे परगास ॥
 बिजुली चमकै होइ अनंदु ।
 जिह पउडे प्रभ बाल गोविदु ॥
 इहु जीड राम नाम लिव लागै ।
 जरा मरनु छूटे असु भागै ॥१॥
 अथरन वरन सिड मन ही प्रीति ।
 इउमै गावनि रावहि गीत ॥

अनहृद स्वद होत मुनकार ।
 जिह पउडे प्रभ ची गोपाल ॥२॥
 खंडल संडल संडल संडा ।
 त्रिय असथान तीनि तिअ खंडा ॥
 अगम अगोचर रहिआ अभ अंत ।
 पारु न पावै को धरनीधर मंत ॥३॥
 कदली पुहप धूप परगास ।
 रज पंकज महि लीश्रो निवास ॥
 दुआदस दल अभ अंतरि मंत ।
 जह पउडे स्थी कमलाकंत ॥४॥
 अरध उरध सुखि लागो कासु ।
 सुन संडल महि करि परगासु ॥
 ऊहां सूरज नाही चंद ।
 आदि निरंजनु करै अनंद ॥५॥
 सो ब्रह्मसंडि विडि सो जानु ।
 मानसरोवरि करि हृसनानु ॥
 सोहंसो जा कड है जाप ।
 जा कड लिपत न होइ पुन अरु पाप ॥६॥
 अवरन वरन घाम नही छाम ।
 अवर न पाईये गुर की साम ॥
 आयी न ढेरे आवै न जाह ।
 सुन सहज महि रहिओ भमाह ॥७॥
 मन मधं जानै जे कोह ।
 जो योलै सो आपै होह ॥
 जानि संत्रि मनि अस्थिर करै ।
 कहि कर्थार सो प्रानी तरै ॥८॥

१२

बोटि मूर जा के परमाम ।
 बोटि महारेष यह यज्ञिनाम ॥
 हुरता बोटि तारे मध्यनु दर्श ।
 महाता दोटि देव उपर्य ॥
 अठ लालठ गठ खेदर राम ।
 लाम देव निठ भाटी याम ॥३॥
 दोटि लक्ष्मी शोटि भद्र ।
 मूर उक्तिमठ उपटि याव ॥
 ता पठ बोटि यों परमाम ।
 परम दोटि लार्व द्विष्ठार ॥४॥
 इष्ठ बोटि लक्ष्मी भिष्ठि ।
 लालठ दोटि रावे लालीम ।
 लिमार्वि बोटि लालाह भाव ॥५॥
 दोटि लोटि भोटि लेला ।
 लेलेह लाला दोटि लेला ॥
 दोटि लाल दुर्दु दुर्दु दिल ।
 दिल दोटि लाल दिल दिल ॥६॥
 लाल दोटि लिल दिल ।
 लिल दोटि लिल दिल ॥७॥
 लिल दोटि लिल दिल ।
 लिल दोटि लिल दिल ॥८॥

यिदिआ कोटि सभै गुन कहै ।
 तरु पारम्परा का अंतु न लहै ॥६॥
 यावत कोटि जाके रोमावली ।
 रामन सेता जह थे छली ॥
 रामन कोटि यहु कहन पुरान ।
 पुरजोगत दा मथिता भानु ॥७॥
 कंदप कोटि जाहूलर्वन भरहि ।
 अंतर अंतरि गमया इरहि ॥
 नहि नकीर मूनि मारियान ।
 रेहि नभी पर मांगड दान ॥८॥

गग विमल प्रभारी

१

मरन गीवन थी नंदा जाही ।
पापन रणि मठन बहारी ॥
झटीरे ते भिक्षार द्विलाला ।
धार यदु पाटा धार दीपाल ॥१॥
खेल गर्द दुरुदूरि बहारा ।
सदु जाहु तिर रुगुजाल उदा ।
ली बिहु दोलाल देवा भारा ।
जा हा धुम दृश्यहि समाल ॥२॥
बहु रहे ति विहु दृश्यहि ।
दुरु भद्रा जाहु देवा भिला ॥३॥

२

धुमु दृश्यहि राहु देवा दुरु भिला ॥१॥
दुरु भिला रहु भिला दुरु रहे रहा ॥२॥
जाहु देवा देवा देवा देवा ॥३॥
इतन देवा देवा देवा देवा देवा ॥४॥
दिव भिला दिव भिला दिव भिला दिव ॥५॥
भिला दिव भिला दिव भिला दिव ॥६॥
दिव भिला दिव भिला दिव भिला दिव ॥७॥
दिव भिला दिव भिला दिव भिला दिव ॥८॥
दिव भिला दिव भिला दिव भिला दिव ॥९॥
दिव भिला दिव भिला दिव भिला दिव ॥१०॥

संत कवीर

अहतु कवीर सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना ।
केवल नामु जपहु रे प्रानी तब ही निहचै तरना ॥६॥

३

अवलि अलह नूर उपाहश्चा कुदरति के सभ बंदे ।
एक नूर वे सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥

लोगा भरमि न भूलहु भाई ।

खालिकु खलक खलक महि खालकु पूरि रहिओ खब ठाई ॥१॥
माटी एक अनेक भाँति करि साजी साजनहारै ।
न कहु पोच माटी के भांडे ना कहु पोच कुंभारै ॥२॥
सभ महि सचा एकौ सोई तिस का कीआ सभु कहु होई ।
हुक्सु पछानै सु एको जानै धंदा कहीचै सोई ॥३॥
अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुड़ दीना मीठा ।
कहि कवीर मेरी संका नाली सरव निरंजनु ढीठा ॥४॥

४

येद करेय कहहु मत मूढे झूठा जो न विचारै ।
जड सभ महि एक खुदाइ कहत हउ तड किड मुरगी मारै ॥

मुला कसहु निश्चाड खुदाइ ।

तेरे मन का भरमु न जाई ॥५॥

पकरि जीड आनिआ देह विनासी माटी कट विसमिल कीआ ।
जोनि यस्य अनाहत लागी कहु हलालु किड कीआ ॥२॥
किआ उज्जपाकु कीआ सुहु धोइआ किआ मसीति मिरलाइआ ।
जट दिल महि कपट निवाज गुजारहु किआ हज कावै जाइआ ॥३॥
तू नापाकु पाकु नष्टी मूर्मिआ तिसका मसु न जानिआ ।
कहि कवीर भिमनि वे चूका दोजक लिड मन् मानिआ ॥४॥

५

सुन संधिश्चा तेरी देव देवा कर अधपति आदि समाई ।
 सिध समाधि अंतु नही पाइश्चा लागि रहे सरनाई ॥
 लेहु आरती हो पुरख निरंजन सतिंगुर पूजहु भाई ।
 छाढा ब्रह्मा निगम बीच्जरै अलखु न लखिश्चा जाई ॥१॥
 सतु रेखु नासु कीश्चा बाती दीपकु दे उज्यारा ।
 जोति लाइ जगदीस जगाइश्चा बूझै बूझनहारा ॥२॥
 पंच सवद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी ।
 कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरवानी ॥३॥

सलोक

कवीर मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रासु ।
 आदि जुगादी सकल भगत ताको सुखु बिज्ञासु ॥१॥
 कवीर मेरी जाति कउ सभु को हसनेहारु ।
 अज्ञिहारी हस जाति कउ जिह जपिओ सिरजनहारु ॥२॥
 कवीर डगमग किशा करहि कहा हुलावहि जीउ ।
 सरब सूख को नाहको राम नाम रसु पीउ ॥३॥
 कवीर कंचन के कुँडल बने ऊपरि लाल जडाउ ।
 दीसहि दाघे कान जिउ जिन मनि नाही नाउ ॥४॥
 कवीर औसा पूरु आधु जो जीवत नितकु होइ ।
 निरभै होइ कै गुन रवै जत पेखड तत सोइ ॥५॥
 कवीर जा दिन हउ सूआ पाढ़े भहया अनंदु ।
 माहि मिलिओ प्रभु आपता संगी भजहि गोबिंदु ॥६॥
 कवीर सभ ते हम दुरे हम तजि भलो सभु कोइ ।
 जिनि औसा करि वृक्षिआ मीतु हमारा सोइ ॥७॥
 कवीर आइ सुझहि पहि अनिक करे करि भेस ।
 हम राखे गुर आपने उनि कीनो आइसु ॥८॥
 कवीर सोइ जारीअै जिह मूथै सुखु होइ ।
 भलो भलो सभु को कहे दुरो न मानै कोइ ॥९॥
 कवीर राती हांवहि कारीआ कारे ऊभे जंत ।
 लै फाइ उठि धावते सि जानि मारे भगवंत ॥१०॥
 कवीर चंदन का बिरचा भला चंदियो दाक पलाय ।
 औह भी धंदनु होह रहे धसे जु चंदन पासि ॥११॥
 कर्वर यांमु बडाहै वृदिआ हउ जत दूवहु कोइ ।
 चंदन के निकटे वर्म यांमु सुगन्धु न होइ ॥१२॥

कवीर दीनु रावाइआ दुनी सिड दुनी न चाली साथि ।
 पाइ कुहाड़ा मारिया गाफलि अपने हाथ ॥१३॥
 कवीर हज जह हड़ फिरियो कउतक ठाओ ठाइ ।
 इक राम सनेही वाहरा, ऊजरु मेरे भांइ ॥१४॥
 कवीर संतन की झुंगीआ भली भठि कुपती गाड ।
 आगि लगड तिह धउलहर जिह नाही हरि को नाड ॥१५॥
 कवीर संत मूए किथा रोड़ैयै जो अपुने अिहि जाइ ।
 रोबहु साकतु वाषुरे जु हाटै हाट विकाइ ॥१६॥
 कवीर सारुत श्रैसा है जैसी लसन की खानि ।
 कोने वैठे खाईयै परगट होइ निदान ॥१७॥
 कवीर माइआ ढोलनी पवनु झकोलनहारु ।
 संतहु माखनु खाइया छालि पीथै संसारु ॥१८॥
 कवीर माइआ ढोलनी पवनु वहै हिवधार ।
 जिनि विलोइआ तिनि थाइआ अवर विलोवनहार ॥१९॥
 कवीर माइआ चोरटी सुसि सुसि लावै हाटि ।
 एकु कवीरा ना मुसै जिनि कीनी वारह वाट ॥२०॥
 कवीरं सुखु न एह जुग करहि जु बहुतै मीत ।
 जो चितु राखहि एक सिड ते सुखु पावहि नीत ॥२१॥
 कवीर जिसु मरनै ते जगु दरै मेरे मन आनंदु ।
 मरने ही ते पाईयै पूरनु परमानंदु ॥२२॥
 राम पदारथु पाइकै कवीरा गांठि न खोलह ।
 नही पटणु नही पारखु नही गाहकु नही झोलु ॥२३॥
 कवीर तासिड प्रीति करि जाको ठाकुरु रामु ।
 पंडित राजे भूपती आवहि कउने काम ॥२४॥
 कवीर प्रीति इक सिड कीए आन दुविधा जाइ ।
 भावै लावै केस करु भावै घररि मुढाइ ॥२५॥

कवीर जगु काजल की कोठरी अंध परे तिस माहि ।
 हउ बलिहारी तिन्ह कड पैसि जु नोकसि जाहि ॥२६॥
 कवीर इहु तनु जाइगा सकहु ते लेहु बहोरि ।
 नांगे पावहु चे गए जिन्ह के लाख करोरि ॥२७॥
 कवीर इहु तनु जाइगा कवनै मारगि लाइ ।
 कै संराति करि साध की कै हरि के गुन गाइ ॥२८॥
 कवीर मरता मरता जगु मूथा मरि भी न जानिआ कोइ ।
 ऐसे मरने जो मरै बहुरि न मरना होइ ॥२९॥
 कवीर मानस जनसु दुलंभु है होइ न बारैवार ।
 जिउ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागहि ढार ॥३०॥
 कवीरा तुझी कवीर तू तोरो नाउ कवीरु ।
 राम रतनु तब पाइयै जड पहिले तजहि सरीह ॥३१॥
 कवीर मंत्रु न फंसीयै जुमरो कहियो न होइ ।
 करम करीम जु करि रहे मेटि न साकै कोइ ॥३२॥
 कवीर कसउटी राम की मूठा ठिकै न कोइ ।
 राम कसउटी सो सहै जो मरि जीवा होइ ॥३३॥
 कवीर ऊजल पहिरहि कापरे पान सुपारी खाहि ।
 एक स एरि के नाम विनु वावे जम्पुर जाहि ॥३४॥
 कवीर दंदा जरजरा फूटे छेंक हजार ।
 दरूपु दरूपु तिरि गए दृवे जिन मिर भार ॥३५॥
 कर्द्यार हाठ जरे जिउ लाकरी केस जरे जिउ धासु ।
 इहु जग जरता देवि के भद्रओ कवीर उदासु ॥३६॥
 कवीर गरबु न कीर्जीयै धाम लयें हाठ ।
 देवर ऊपर दूब तर चं कुनि धरनी गाए ॥३७॥
 कर्द्यार गरबु न कीर्जीयै ऊचा देवि अवासु ।
 आगु कालि भुइ नेटरा ऊपरि जाम वासु ॥३८॥

कबीर गरदु न कीजीशै रं कु न हसीशै कोइ ।
 अजहु सु नाउ समुँद्र महि किआ जानउकिआ होइ ॥३६॥
 कबीर गरदु न कीजीशै देही देखि सुरंग ।
 आजु कालि तजि जाहुगे जिउ कांचुरी भुयंग ॥४०॥
 कबीर लूटना है त लूटि लै राम नाम है लूटि ।
 फिरि पाछै पहुताहुगे प्रान जाहिगे छूटि ॥४१॥
 कबीर थैसा कोई न जनभिओ अपने घर जावै आगि ।
 पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि ॥४२॥
 को है लरिका वेचै लरिकी वेचै कोइ ।
 सांझा करै कबीर सिउ हरि संगि बनजु करेह ॥४३॥
 कबीर अवरह कउ उपदेसते मुख मै परिहै रेतु ।
 रासि विरानी राखते खाया घर का खेतु ॥४४॥
 कबीर साधू की संगति रहउ जउ की भूसी खाउ ।
 होनहारू सो होइहै साकत संगि न जाउ ॥४५॥
 कबीर संगति साध की दिन दिन दूना हेतु ।
 साकत कारी कांवरी धोए होइ ने सेतु ॥४६॥
 कबीर मनु मंडिआ नही केस मुंडाए कांइ ।
 जो किन्हु कीआ सु मन कीआ मंडा मंडु अजांइ ॥४७॥
 कबीर रामु न छोड़ीशै तनु धनु जाइ त जाउ ।
 चरन कमल चितु वेधिआ रामहि नामि समाउ ॥४८॥
 कबीर जो हम जंतु बजावते टूटि गंड सभ तार ।
 जंतु विचारा किआ करै चले बजावन हार ॥४९॥
 कबीर माइ मंडउ तिह गुरु की जा ते भरमु त जाइ ।
 आप हुवे चहु वेद महि चेले दीए बहाइ ॥५०॥
 कबीर जेते पाप कीए राखे तलै दुराइ ।
 परगट भए निदान सभ जब पूछे धरमराइ ॥५१॥

कवीर हरि का सिसरनु छाडि कै पालिओ बहुतु कुटंद्व ।
 धंधा करता रहि गड़शा भारे रहिया न बंधु ॥५२॥
 कवीर हरि का मिसरनु छाडि कै राति जगावन जाइ ।
 सरपनि होइ कै अउतरै जाए अपुने खाइ ॥५३॥
 कवीर हरि का मिसरनु छाडि कै आहोइ राखै नारि ।
 गदाही होइ कै अउतरै भार सतै मन चारि ॥५४॥
 कवीर चनुगाइ आनि घनी हरि जपि हिरदै साहि ।
 गूरी उपरि गोलता मिरि त ठाहर नाहि ॥५५॥
 दथीर गोई गुगु थंचिहै जा गुगु फडीयै रामु ।
 देही भिस री नापुरी पवित्रु होइगो ग्रामु ॥५६॥
 गरीर मोई गुल भक्ती जा कुल हरि को दामु ।
 चिह्न कर दामु न उपरी मो कुल ठाक पलामु ॥५७॥
 दथीर ही गरि ब्राह्मन दग्न घन लाग भजा फहराइ ।
 हृषी गुप्त ते भिराया भली जड हरि मिसरन दिन जाइ ॥५८॥
 दर्ढी गम्भु गम्भु हड फिरियो मावद्वा धंभ भदाइ ।
 नीड़ नाड वो चढ़ी गम्भ देही शोकि यजाइ ॥५९॥
 मार्गि मार्गि शीओर थंचा निरायियो आइ ।
 तीरि भित्ति गगडीयारी जगातु अत्तियै जाइ ॥६०॥
 गृहा रीमु गृही वा उत्तियो दगुमामा ।
 हरि ता मिसरनु छाडि कै बहिरी आया गाय ॥६१॥
 गवियामा ॥ ६२ ॥ ये आर्द्धी ताति भर्द्धीरी लोइ ।
 ली, गारम जिम्में आहे हड गु दंड ॥६३॥
 ली, ली ली ली ली ली ली ली ली ली ॥६४॥
 ली, ली ली ली ली ली ली ली ली ॥६५॥
 ली, ली ली ली ली ली ली ली ॥६६॥
 ली, ली ली ली ली ली ली ॥६७॥

कंवीर नैन निहारउ तुझ कड़ स्वेच्छन सुनउ तुअ नाउ ।
 वैण उचरउ तुअ नाम जी चरन कमल रिदं ठाउ ॥६५॥
 कबीर सुरग नरक ते मै रहिओ सतिगुर के परसादि ।
 चरन कमल की मउज महि रहउ अंति श्रु आदि ॥६६॥
 कंवीर चरन कमल की मउज को कहि कैसे उनमान ।
 कहिवे कड़ सोभा नही देखा ही परवानु ॥६७॥
 कबीर देखि कै किह कहउ कहे न को पतीआह ।
 हरि जैसा तैसा उही रहउ हरखि गुन गाइ ॥६८॥
 कबीर चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगिं चितारे ।
 जैसे वचरहि कूज मन माइआ ममता रे ॥६९॥
 कबीर अंवर घनहरु छाइआ घरखि भरे सरताल ।
 चांत्रिक जिड तरसत रहै तिन को कउनु हवालु ॥७०॥
 कबीर चकई जड निसि थीछौरे आह मिलै परभाति ।
 जो नर विहुरे राम सिड ना दिन मिलै न राति ॥७१॥
 कबीर रैनाइर विछोरिश्चा रहु रे संख ममूरि ।
 देवल देवल धांहडी देसहि उगवत सूर ॥७२॥
 कबीर सूता किशा करहिं जागुं रोइ भै दुख ।
 जो का धांसा गोर महि सों किड सोचै सुख ॥७३॥
 कबीर सूता किशा करहि उठिं कि न जपेहि मुरारि ।
 द्वैं दिन सोवनु होइ गो लांवे गोड पंसारि ॥७४॥
 कंबीर सूता किशा करहिं वैठा रहु अरु जागु ।
 जाके संग ते थीछुरां ताही के संग लागु ॥७५॥
 कंबीर संत की गैल न छोड़ीझै जारगि लागा जाउ ।
 पैखत ही पुंनीत होइ भेषते जैपीझै नाउ ॥७६॥
 कबीर साकतं संगुं न कीजीझै दूरहि जोईझै भागि ।
 बासनु कांरो परसीझै तड़ कहुं लागै दागु ॥७७॥

कवीर रासु न चेतिश्चो जरा पहुँचिओ आह ।
 लागी मंदिर हुशार ते श्रव किंशा काढिआ जाह ॥७८॥
 कवीर कारनु सो भइओ जो कीनो करतार ।
 तिस विनु दूसर को नही एकै सिरजनहार ॥७९॥
 कवीर फल लागे फलनि पाकत लागे आव ।
 जाह पहुँचहि रासम कड जड वीचि न खाही कांव ॥८०॥
 कवीर ठारुर पऱहि मोळि ले मन छठ तीरथ जाहि ।
 देन्या देन्या इयांगु धरि भूले भटका खाहि ॥८१॥
 कवीर पादन परमेमुरु कीशा पूजै सभु संसार ।
 दम भरवासे जो रहे घूरे काळी धार ॥८२॥
 कवीर कागद की ओंकरी मनु के करम कपाट ।
 पादन योगी पिरयसी पंडित पादी चाट ॥८३॥
 कपीर दालि तरता अयहि कर अय करता मु द्वगाल ।
 पादे वडु न दांडगा जड मिर पर आंधी कालु ॥८४॥
 कपीर दीमा गंगु दहु देविआ दीमी धोहु लाग ।
 कपीर दीमा यह गुना मतिहीना नायार ॥८५॥
 कपीर नेंद्र नुभि यड जग न दो निमझार ।
 गिरिहु गम्या गिरिहु गु गिरिहु परिहु गार ॥८६॥
 कपीर उगानी जड़जा भार भार गम याग ।
 दिव दिव अदि । दीर्घी दीर्घी दिव निरामा निरामा ॥८७॥
 दीर्घी दीर्घी । दीर्घी दीर्घी दीर्घी दीर्घी दीर्घी गुम्होराम ।
 चाह दो अराम । दो अंगहि दोमा गमा ॥८८॥
 चाह दो अराम । दो अराम दो गमी गाहा गाह ।
 दो अराम । दो अराम दो गमी गाहा गाह ॥८९॥
 दीर्घी दीर्घी । दीर्घी दीर्घी दीर्घी दीर्घी ।
 दीर्घी दीर्घी । दीर्घी दीर्घी दीर्घी दीर्घी ॥९०॥

कवीर वैसनो हूआ त किश्चा भइआ माला मेलीं चारि ।
 बाहरि कंचनु बारहा भीतरि भरी भंगार ॥६१॥
 कवीर रोड़ा होइ रहु घाट का तजि मन का अभिमानु ।
 औसा कोई दासु होइ ताहि मिलै भगवानु ॥६२॥
 कवीर रोड़ा हूआ त किश्चा भइआ पंथी कउ दुखु देइ ।
 औसा तेरा दासु है जिउ धरनी महि खेइ ॥६३॥
 कवीर खेह दुई तउ किश्चा भइआ जौ उडि लागै अंग ।
 हरिजनु औसा चाहीशै जिउ पानी सरबंग ॥६४॥
 कवीर पानी हूआ त किश्चा भइआ सीरा ताता होइ ।
 हरिजनु औसा चाहीशै जैसा हरि ही होइ ॥६५॥
 ऊ भवन कनकामनी सिखरि धजा फहराइ ।
 ता वे भली मधूकरी संत संग गुन गाइ ॥६६॥
 कवीर परभावे तारे खिसहि तिउ इहु खिसै सरीरु ।
 ए दुइ अखर ना खिसहि सो गहि रहिओ कवीरु ॥६७॥
 कवीर कोठी काठ की दहदिसि लागी आगि ।
 पंडित पंडित जलि मूए मूख उवरे भागि ॥६८॥
 कवीर संसा दूरि करु कागद देइ विहाइ ।
 वावन अखर सोधि कै हरि चरनी चिठु लाइ ॥६९॥
 कवीर संतु न छाडै संतर्ष जउ कोटिक मिलहि असंत ।
 मलिश्रागरु भुशंगम वेदिओ त सीतलता न तजंत ॥१२१॥
 कवीर मनु सीतलु भइआ पाहिआ गहम गिश्चानु ।
 जिनि जुआला जगु नरिआ सु जन के उद्दक समानि ॥१०१॥
 कवीर सारी सिरजनहार की जानै नाही कोइ ।
 कै जानै श्रापन धनी कै दासु दीवानी होइ ॥१०२॥
 कवीर भली भई जो भउ परिया दिसा गई सभ भूलि ।
 ओरा गरि पानी भइआ जाइ मिलिओ ढलि कूलि ॥१०३॥

कबीर राम कहु कहिवे माहि विवेक ।
 एकु अनेकहि मिलि गङ्गाआ एक समाना एक ॥११७॥
 कबीर जा घर साध न सेवीश्रहि हरि की सेवा नाहि ।
 ते घर मरघट सारखे भूत वसहि तिन माहि ॥११८॥
 कबीर गंगा द्वाशा बाबरा बहरा हूआ कान ।
 पावहु ते पिगल भहशा मारिआ सतिगुर वान ॥११९॥
 कबीर सतिगुर सूरमे वाहिआ वानु जु एकु ।
 लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ॥१२०॥
 कबीर निरमल बूद अकास की परि गई भूमि विकार ।
 विनु संगति इड मानई होइ गई भठ छार ॥१२१॥
 कबीर निरमल बूद अकास की लीनी भूमि मिलाइ ।
 अनिक सिथाने पचि गए ना निरचारी जाइ ॥१२२॥
 कबीर हज कावे हउ जाइ था आगे मिलिआ खुदाइ ।
 साँई मुझ सिउ लरि परिआ तुम्है किन्हि फुरमाई गाइ ॥१२३॥
 कबीर हज कावे हँइ होइ गङ्गाआ केती बार कबीर ।
 साँई मुझ महि किआ खता मुखहु न बोलै पीर ॥१२४॥
 कबीर जीश्र जु मारहि जोर करि कहते हहि जु हजालु ।
 दफतर दई जब काढि है होइगा कडन हवालु ॥१२५॥
 कबीर जोर कीआ सो जुलमु है लेइ जबावु खुदाइ ।
 दफतर लेखा नीकसै मार मुहै मुहि खाइ ॥१२६॥
 कबीर लेखा देना सुहेला जड दिल सूची होइ ।
 उसु साचे दीवान माई पला न पकरै कोइ ॥१२७॥
 कबीर धरती अरु आकास महि दुई तूं घरी अबध ।
 खट दरसन संसे परे अरु चउरासीह सिध ॥१२८॥
 कबीर मेरा मुझ महि किन्हु नही जो किन्हु है सो तेरा ।
 तेरा तुम कड सउपते किआ लागै मेरा ॥१२९॥

नीचे लोहन करि रहड ले, साजन घट माहि ।
 सभ रस खेलड पींश्र सडं किसीं लखावड नाहि ॥१४३॥
 आठ जाम चउसडि धरी तुअ निरखत रहै जीउ ।
 नीचे लोहन कीड करड सभ घट देखड पीड ॥१४४॥
 सुनु सखी पीश्र महि जीउ वसै जीश्र महि वसै कि पीड ।
 जीउ पीड वूफहु नही घटि महि जीउ कि पीड ॥१४५॥
 कवीर वामनु गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहि ।
 अरम्भि उरम्भि कै पचि मूआ चारड वेदहु माहि ॥१४६॥
 हरि है खांडु रेतु महि विखरी हाथी चुनी न जाइ ।
 कहि कवीर गुरि भली दुम्काई, कीटी होइ कै खाइ ॥१४७॥
 कवीर जउ तुहि साध पिरंम की सीसु काटि करि गोइ ।
 खेलत खेलत हाल करि जो किछु होइ त होइ ॥१४८॥
 कवीर जउ तुहि साध पिरंम की पाके सेती खेलु ।
 काची सरसउ पेलि कै ना खत्ति भई न चेल ॥१४९॥
 ढूँढत ढोलहि अंध गति अरु चीन्हत नाही संत ।
 कहि नामा किउ पार्ष्णवै विनु भगतहु भगवंतु ॥१५०॥
 हरि सो हीरा छाडि कै करहि आन की आस ।
 ते नर दोजक जाहिगे सति भाखै रविदास ॥१५१॥
 कवीर जउ ग्रिहु करहि त धरमु करु नाहि त करु वैरागु ।
 वैरागी वंधनु करै ता को बडो अभागु ॥१५२॥

स्वर्ण कलश है। उसमें (व्रजानन्द रस की) एक निर्मल धारा चूँ रही है जो शनैःशनैः रस में रस की मात्रा बढ़ती जाती है। (इस रस के पान करने के लिए) एक अनुपम बात यह है कि पवन ही इस रस के लिए प्याले के रूप में सुसज्जित किया गया है। (मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि) तीनों लोकों में इस रस का पीने वाला एक योगिराज कौन है ? कवीर कहता है कि पुरुषोत्तम का ज्ञान इस प्रकार प्रकट हुआ है और कवीर उसी रग में रंजित हो गया है। समस्त संसार तो भ्रम में भूला हुआ है। केवल मन इस राम रूपी रसायन* में मतवाला हो गया है।

रागु गउड़ी

१

अब राम रूपी जल ने मुझ जलते हुए को पा लिया है और उस जल ने मेरे जलते हुए शरीर को बुझा दिया है। (तुम अपने मन को मारने के लिए वन जाते हो किंतु उस जल के विना भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस अग्नि से सुर नर जल चुके हैं—(उस अग्नि से) राम रूपी जल ने भक्तों को जलाने से बचा लिया। इस भव सागर में एक सुख-सागर भी है और पान करने से उसका जल कभी कम नहीं होता। कवीर कहता है कि तू सारंपाणी (विश्वात्मा) का भजन कर क्योंकि राम रूपी जल से ही तेरी तृष्णा (प्यास) बुझ सकी है।

२

हे माधव, तंरे आनन्द रूपी जल को पीते-पीते आज तक मेरी प्यास नहीं बुझी। (क्योंकि) इस जल में (वासना की) आग अधिकाधिक उठी हुई है। (यहीं बड़वाग्नि से तात्पर्य है। तू यदि सागर है तो मैं मछली हूँ यद्यपि मैं जल में रहते हुए भी जल से रहित हूँ। तू पिंजड़ा है तो मैं तेरा शुक हूँ। (इस पिंजड़े में रहते हुए) यम रूपी

*वह ओपधि जिसके खाने से मनुष्य वृद्ध या बीमार नहीं होता।

५

श्रवर, चर, फीट और पतंग के अनेक जन्मों में इमने बहुत रम-रंग किए। ऐ राम, जब ने इमने गर्भ में निवास किया, तब ने इमने इन योनियों के अनेक घर वसाए हैं। (इम जन्म में) कभी इम यांगी हैं, कभी यती, कभी तपस्त्री और कभी व्रजानारी। कभी छत्रपति राजा और कभी भिखारी है। किन्तु इतना निश्चय है कि शाक मर जाते हैं और संत जीवित रहते हैं क्योंकि वे जिहा ने रामामृत पीते हैं। कवीर कहता है कि द्वे प्रभु, आप कृष्ण कीजिए। जो कुछ भी मुझ में अभाव हो उने कृपया पूरा कर दीजिए।

६

कवीर ने ऐसा आश्चर्य देखा है कि यह संसार ददी (ब्रह्म) के धोखे में पानी (माया) का मंथन कर रहा है। गधा (कपटी गुरु या कपटी मन) दरी अंगूरी बेल (व्रज-ज्ञान) चर रहा है और वह (अपने अहंकार में) हँसता और रेकता (हीस-हीग करता) रहता है और मरता है। भैंस (माया) मुख रहित वल्लाडा (अज्ञान) उत्पन्न करती है जो पृथ्वी-तल पर प्रसन्न होकर (जीवों का) भक्षण करता है। कवीर कहता है कि इस खेल का सारा रहस्य मुझ पर प्रकट हो गया। भेड़ (वासना) बकरी के बच्चे लेले (धार्मिक पुस्तकों) का स्तन-पान करती है। कवीर कहता है कि राम में रमण करते हुए (शुद्ध) मृति मुझ में प्रकट हो गई मैंने यह सरल युक्ति (सांभौति गुरि) प्राप्त की है।

७

जिस प्रकार जल छोड़कर मछुली वाहर अनेक कष्ट पाती है उसी प्रकार पूर्व-जन्म में तप से रहित होकर इस जन्म में मेरी बहुत बुरी दशा हुई। हे राम, अब कहो कि मेरी क्या गति होगी? क्या वनारस छोड़कर मेरी मति भ्रष्ट हो गई? मैंने अपना सारा जन्म तो वनारस में ब्यतीत किया और मरते समय मैं मगहर में उठ कर चला आया।

काशी में मैंने वहुत बर्पों तक तप किया । लेकिन मरते समय मैं मगहर का निवासी हो गया । ऐ कवीर, काशी और मगहर को तो तूने समान समझा है किंतु अपनी ओळी भक्ति से तू कैसे (भव-सागर के) पार उतरेगा ? तू इस महामंत्र (गुरु) को गर्ज कर कह दे (जिसे बनारस के स्वामी शिव और सभी लोग जानते हैं कि) कवीर मरने पर भी श्री राम में रमण करता है ।

८

जिस शरीर में सुगंधित द्रव-पदार्थ और चंदन मल-मल कर लगाया जाता है वहा लकड़ी के साथ जलता है । इस शरीर और धन की क्या वटाई है कि पृथ्वी पर गिर पड़ने (मर जाने) के बाद किर डटाया नहीं जा सकता । जो लोग रात को सोते हैं और दिन में काम करते हैं और एक चाण भी ईश्वर का नाम नहीं लेते, उनके हाथ ने ऊंचर है (शासन करने वाले हैं) और वे मुख में तांबूलादि खाए हुए हैं । किंतु मरते समय वही लोग (अपनी अरथी पर) चोर की मौति वधि गए हैं । जो लोग युक्ति से धीरे-धीरे हरि का गुण गान करने हैं वे यम द्वी गाम में रमण करते हुए मुख पाते हैं । हरि ने ही हृषि कर्म के मुझ में नाम की हड्डता दी और उन्हीं ने अपनी मुर्मिय मुक्त में यमा दी है । कवीर कहता है कि रे अंधे, तू चेत । अनन्त गम दा रक्ष दे और यह समस्त प्रपञ्च भूता है ।

९

जहाँ मैंने गांविद की जान लिया है तो जो मेरे जिए यम थे वही उलट दर में लिए गए हो गए । इस मिथिल में दुःख के विनाश करने पर मेरे विश्वास रिया । मेरे शशु ही उलट कर मेरे जिए मित्र द्वारा लाए गए शाक हो उलट कर दिननितक गवन बन गए हैं । अब दूर दूरी दे सुन्दर लिकारक मान लिया है । जब मैंने गांविद का गम लिया तो शारि हुई । जो शरीर में करोन्ही वाधाएँ भी थे

सब उलट कर सुख-गूर्ण सहज समाधि में 'परिवर्तित हो गई'। जो अपने आप को स्वयं पहिचान लेता है उसे न तो रोग और न त्रिविध ताप व्याप सकते हैं। मेरा भी उलट कर शाश्वत और नित्य हो गया। मैंने इसे तब समझा जब मैं जीवेन-मृतक हो गया। कवीर कहता है, इस प्रकार सहज सुख में समा जाओ और न तो स्वयं डरो, न दूसरे को डराओ।

१०

शरीर के मरने पर जाव किस स्थान को जाता है और वह किस प्रकार अतीत अनाहत शब्द में रत हो जाता है ? जो राम को जानते हैं वही इस तत्व को पहिचानते हैं जिस प्रकार गँगा शक्कर खाकर मन में प्रसन्न होता है। मेरा ईश्वर (बनवारी) ऐसा ज्ञान कहता है—रे मन, तू सुपुण्णा नाड़ी में वायु को दृढ़ कर ऐसा गुरु कर कि फिर कोई गुरु न करना पड़े। तू ऐसे पद में रमण कर कि फिर अन्य पद में रमण न करना पड़े। तू ऐसा ध्यान धर कि फिर दूसरा ध्यान न धरना पड़े। तू इस प्रकार मर कि फिर कभी न मरना पड़े। गंगा पिंगला नाड़ी) को उलट कर तू यसुना (इडा नाड़ी) में मिला दे और ब्रिना संगम-जल के तू मन ही मन में (अपनी अनुगूति में) स्नान कर। यह व्यवहार (संसार का प्रपञ्च) तो नर्क (लोचारक) के समान है। इस प्रकार तत्व का विचार कर लेने के अनन्तर और क्या विचारने की आवश्यकता ? जल, तेज, वायु, पृथ्वी और आकाश जैसे एक दूसरे के समीप रहते हैं, इसी प्रकार तू हरि के समीप रह। कवीर कहता है कि निरंजन ब्रह्म का ध्यान कर। तू ऐसे धर को जा, जहाँ से लौट कर फिर आना न हो।

११

जिस सुख के माँगने पर आगे दुःख आता है, वह सुख माँगते हुए हमें अच्छा नहीं लगता। अभी तक मेरी आत्मा को विषय-

वासना से सुख की आशा है। फिर राजा राम में निवास कैसे हो सकेगा? जिस सुख से ब्रह्मा और शिव भी डरते हैं उसी सुख को हमने सच्चा सुख समझ लिया है। सनकादिक, नारद, मुनि और शेष ने भी इस शरीर में मन की वास्तविकता नहीं पहिचानी। हे भाई, इस मन को कोई खोजे कि यह शरीर छूटने पर कहाँ समा जाता है। श्री गुरु के प्रसाद से ही जयदेव और नामदेव इन्हींने भक्ति का प्रेम समझा है। इस मन का न तो कही आना होता है न जाना। इसके संबंध में जिसका भ्रम दूर हो जाता है, उसी ने सत्य पहिचाना है। इस मन का न कोई रूप है, न इसकी कोई रेखा है। यह (ब्रह्म की आज्ञा से ही) उत्पन्न होता है और उसी आज्ञा को समझ कर उसी में लीन हो जाता है। इस मन का रहस्य कोई विरला ही जानता है। इसी मन में सुखदेव जी लीन हुए। समस्त शरीरों में केवल एक ही जीवात्मा है और इसी जीवात्मा में कवीर रमण कर रहा है।

१२

एक ही नाम जो रात्रि दिवस जाग रहा है, उसी से प्रेम कर कितने ही (साधक) सिद्ध हो गए! साधक, सिद्ध और सभी मुनि अपनी-सी कर हार गए किंतु एक नाम का कल्पतरु ही उन्हें तारने में समर्थ हो सका। जो हरि करता है वही होता है, दूसरा नहीं। कवीर कहता है कि उसने तो राम का नाम पहिचान लिया है।

१३

हे जीव, तू निर्लज है, तुम्हे (शोड़ी भी) लज्जा नहीं है। तू हरि को छाँड़ कर क्यों किसी के पास जाता है? जिसका स्वामी ऊँचा (सर्वशक्तिमान) है, वह दूसरे के घर जाते हुए शोभा नहीं देता। जो तू अपने स्वामी (की अनुभूति से) भरपूर रहेगा तो वह तेरे ही साथ रहेगा, तुम्हसे दूर नहीं। जिसके चरणों की शरण में स्वयं कमला (लक्ष्मी) है उसके भक्त के घर बोलो, क्या नहीं है? सब कोई (समस्त

ब्रह्मांड) जिसकी वात कहते रहते हैं वही तो समर्थ है और दान करने वाला स्वामी है। कवीर कहता है, संसार में पूर्ण वही है जिसके हृदय में (हरि के अतिरिक्त) और कोई दूसरा (स्वामी, नहीं है।

१४

किसका पुत्र, किसका पिता, किसका कौन है ? कौन मरता है, कौन दुःख देता है ? यह हरि ही एक ऐंद्रजालिक है, और उसी ने संसार में यह माया फैला रखा है। हाय मैया, मैं उस हरि के विषयोंग में कैसे जी सकती हूँ। (इसे आत्मा का कथन मानना चाहिए।) किसका कौन पुरुष है और किसकी कौन छोटी है ? इस तत्व को शरीर रहते विचार लो। कवीर कहता है कि मेरा मन तो इसी ठग से माना है—(यही ठग मुझे पसंद आया है) जब मैं इस ठग को पहिचान लेता हूँ तो उसकी सारी ठग-विद्या (माया) मेरी आँखों से दूर हट जाती है।

१५

अब मुझे राजा राम की सहायता मिल गई है। जिस कारण मैंने जन्म और मरण (के पाश) काटकर परम गति प्राप्त की है। मैंने अपने को साधुओं की संगति में लीन कर लिया है। और पंच दूतों (इंद्रियों) से अपने को छुड़ा लिया है। मैं अपनी जिहा से अमृतमय नाम का जाप जपता हूँ और मैंने अपने को (प्रभु का) विना मोल का दास बना लिया है। सत्गुरु ने मुझ पर विशेष उपकार किया है। उन्होंने मुझे संसार-सागर से निकाल लिया है। उनके चरण-कमलों से मेरी प्रीति लग गई है और मेरे चित्त में गोविंद का दिनोदिन निवास होता है। माया का जलता हुआ अंगार छुक गया और नाम का सहारा होने से मन में संतोष हुआ। मेरे स्वामी प्रभु जल-थल में व्यास हो रहे हैं और जहाँ मैं देखता हूँ वहीं मुझे मेरे अंतर्यामी दीख रहे हैं। मैंने अपनी भक्ति स्वयं ही ढढ़ की है क्योंकि पूर्वजन्म के संस्कार मुझे

मिल गए हैं। कवीर का स्वामी ऐसा ग्रन्थ निवाज़ है कि जिस पर वह कृपा करता हैं वही परिपूर्ण हो जाता है।

१६

जल में छूत है, थल में छूत है और किरणों में भी (ग्रहण के अवसर पर) छूत है। जन्म में भी छूत है, और फिर मरने में भी छूत है। इस प्रकार तूने सूतक से जल कर (परज कर) अपना नाश कर लिया। कह तो रे पंडित, कौन पवित्र है? मेरा मित्र बन कर ऐसा ज्ञान गाता फिरता है! आखों में भी छूत है (कहीं शूद्र की दृष्टि न पढ़ जाय) बोली में छूत है (कहीं शूद्र से बात न हो जाय) और कानों में भी छूत है। (कहीं शूद्र की बात कान में न पढ़ जाय)। उठते बैठते तुम्हें छूत लगती है। यहाँ तक कि भोजन में भी छूत पहुँच जाती है। इस प्रकार कर्म-बंधन में फँसने की विधि तो सभी कोई जानते हैं, मुक्त होने की विधि कोई एक ही जानता है। कवीर कहता है कि जो राम को हृदय में विचारते हैं उन्हें छूत नहीं लगती।

१७

हे राम, यदि तुम्हें अपने भक्त का ध्यान है तो एक भगड़ा सुलभा दो। यह मन बड़ा है या वह जिसमें मन अनुरक्ष है? राम बड़ा है, या वह जो राम को जानता है? ब्रह्मा बड़ा है या वह जिसे उसने उत्पन्न किया है? वेद बड़ा है या वह जहाँ से वह उत्पन्न हुआ है? कवीर कहता है कि मैं (इस भगड़े से ही) उदास हो गया हूँ। (मैं पूछता हूँ, तीर्थ बड़ा है या हरि का दास?)

१८

ए भाई, देखो ज्ञान की आंधी आई है। माया से वांधी हुई यह भ्रम की सारी टट्टी उढ़ गई है। द्विविधा की दो थूनियाँ (योभ रोकने वाली खंभियाँ) गिर पड़ी और मोह का घलेंडा (म्याल) टूट गया। तृष्णा की छानी पृथ्वी के ऊपर गिर पड़ी और दुर्वदि का भांडा फूट

फूट गया । इस आँधी के बाद जो जल वरसा उसी से यह तेरा भक्त भीग गया । कवीर कहता है कि जब उदय होते हुए सूर्य को पहिचाना तो मन प्रकाशित हो उठा । (यहाँ सूर्य का तात्पर्य ब्रह्म-ज्ञान से है ।)

१६

न हरि का यश सुनता है, न हरि का गुण गता है । केवल चकवाद ही में आकाश को (पृथ्वी पर) गिराना चाहता है । ऐसे लोगों से क्या कहा जाय ? जिन्हें प्रभु ने भक्ति से वर्ज्य कर रखा है, उनसे हमेशा डरते ही रहना चाहिए । स्वयं तो एक चुल्लू भर पानी नहीं दे सकते और उसकी निंदा करते हैं जिसने पृथ्वी पर गंगा वहा दी है । वे लोग उटते-तैठते कपट-चक्र चलाते हैं । स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, दूसरों को भी नष्ट करते हैं । बुरी चर्चा को छोड़ कर और कुछ जानते ही नहीं हैं । स्वयं ब्रह्मा भी यदि कुछ कहे तो वे उसे नहीं मान सकते । स्वयं तो अपने को खोते हैं, दूसरों को भी खोते हैं । वे आग लगाकर स्वयं उस घर में सोते हैं । स्वयं तो काने हैं किंतु दूसरों पर हँसते हैं । उन्हें देखकर कवीर केवल लजित ही होते हैं ।

२०

पितरों के जीवन-काल में उन पर श्रद्धा तो रही नहीं अब उनके मर जाने पर उनका श्राद्ध करते हैं ! फिर वेचारे पितर भी क्या कुछ पाते हैं ? (श्राद्ध की चीजें तो) कौवे और कुत्ते ही खाते हैं । कोई मुझे बतला भी तो दे कि कुशलता क्या है ? कुशल कुशल करते तो सारा संसार नष्ट हो रहा है । (केवल कहने से ही) कैसे कुशलता हो सकती है ? मिट्टी के देवी या देवता बनाकर उसके आगे जीवों का बलिदान करते हैं । तुम्हारे पितर तो ऐसे हैं कि अपनी कही हुई (माँगी हुई) चीज़ भी नहीं ले सकते । जो लोग निर्जीव की पूजा के लिए सज्जीव का बलिदान करते हैं उनके लिए अन्तिमकाल बहुत भयानक है । ये संसारी लोग तो राम-नाम की गति न जान सकने से भय में फूटे पड़े

अनुसार उन्हें पास रहने वाला ब्रह्म पास मालूम देता है। जिन्होंने ब्रह्म-रस का पान किया है, वे जानते हैं कि औरी का जल उलट कर वरेडा (ज्ञानी) का जल हो जाता है (अर्थात् उनकी ब्रह्म इंद्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं।) (हे मन) तेरे निर्गुण रूप का रहस्य किससे कहुँ ? (जो उसे समझ सके) ऐसा कोई विवेकी (ज्ञानवान्) हाँ होगा। कवीर कहता है कि जो जैसा पलीता देता है, उसे उसी प्रकार की आग दीखती है।

२३

‘सहज’ की ऐसी विचित्र कथा है जो कही नहीं जा सकती। वहाँ न वर्षा है, न सागर, न धूप, न छाया, न उत्पत्ति और न प्रलय ही है। न जीवन है न मृत्यु, न वहाँ दुःख का अनुभव होता है न सुख का। वहाँ शून्य की जागृति और समाधि की निद्रा दोनों ही नहीं हैं। न वह तीली जा सकती है, न वह छोड़ी जा सकती है, न वह हल्की है, न भारी। उसमें ऊपर नीचे की कोई भावना नहीं है, वहाँ रात और दिन की स्थिति नहीं है। न वहाँ जल है, न पवन। और वहाँ अग्नि भी नहीं है। वहाँ तो एकमात्र सत-गुरु का साम्राज्य है। वह अगम है, इंद्रियों से परे है, केवल गुरु की कृपा से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। कवीर कहता है कि मैं अपने गुरु की बलि जाता हूँ। उन्हीं की अच्छी संगति में मिलकर रहना चाहिए।

२४

हमारा राम एक ऐसा नायक (व्यापार करने वाला) है कि उसने सारे संसार को बनजारा (व्यापार करने वाला) बना दिया है। उस संसार ने पाप और पुण्य के दो बैल ख़रीदे और पवन (सौंस) की पूँजी सजाई। उसने शरीर के भीतर तृष्णा की गोनि भर दी, इस प्रकार उसने अपना टांडा ख़रीदा। (उसे रोकने के लिए) काम और क्रोध-कर वसूल करने वाले हुए और मन की भावनाएँ डाकू बन

गईं । पंच तत्व मिलकर उससे अपना इनाम वसूल करते हैं, इस प्रकार टांडा (भवसागर) के पार उतरा । कवीर कहता है कि ऐ संतो सुनो, अब ऐसी परास्थिति आ गई है कि धाटी (भक्ति-पथ) पर चढ़ते समय एक बैल (पाप) थक गया है । अब तुम अपनी (तृष्णा की) गोनि फेंक कर आगे चल पड़ो ।

२५

नैहर (पेवकड़े) में केवल चार दिन रहता है, किर तो प्रियतम (साहुरड़े) की सेवा में जाना होगा । यह वात अंधे लोग नहीं जानते क्योंकि वे मूर्ख और अज्ञानी हैं । प्रेयसी अपना साज़-सामान वाँधकर खड़ी है । क्योंकि विदा कराने के लिए पाहुने आए हुए हैं । वहाँ जो तलाई (छोटी सरोवरी) दीख पड़ रही है, उससे पानी लेने के लिए किस रस्सी की आवश्यकता है ? (अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के स्रोत का जल लेने के लिए किसी ग्रंथ-रूपी रस्सी की आवश्यकता नहीं है ।) यदि उसी क्षण रस्सी टूट जाय तो पनिहारी (आत्मा) उठ कर चली जाती है । यदि स्वामी कृपा करे और दयालु हो जाय तो अपना सारा कार्य सँचर जाय । सौभार्यशालिनी तो उसे ही समझना चाहिए जो गुरु के शब्द का विचार करे । (अन्य छियाँ तो) कर्म-वंधन (किरत) में बँधी हुई हैं, उसी में वे धूमती फिरती हैं और उसी प्रकार की वातें कहती हैं, वे वेचारी क्या करें ! (परिणाम यह होता है कि) कि वे निराश होकर (इस संसार से) चल खड़ी होती हैं और उनके चित्त में किंचित् भी धैर्य नहीं रहता । कवीर की शरण में जाकर हरि के चरणों से लगो और उसका भजन करो ।

२६

योगी कहते हैं कि योग ही अच्छा और श्रेयस्कर है, और कोई दूसरा (संप्रदाय) टांक नहीं है । रुंदित और मुंदित (जिन्होंने आप-और सिर के बाल मुड़ा लिए हैं) और एक शब्द = ^

यही कहते हैं कि इम लोगों ने विद्धि प्राप्त कर ली है। (परन्तु उच्च यात यद ऐ कि) हरि के बिना सभी अज्ञानी लोग भ्रम में भूले हुए हैं। अपने को मुक्त कराने के लिए जिस किसी की शरण में जाओ वही अनेक वंघनों में बैधा हुआ है। उनकी (वतलाई हुई) विधि तो जहाँ से उत्तम हुई थी, वही ती समा गई और उसी समय विस्मृत हो गई। फिर भी पंडित, गुणी और शूरवीर तो यही कहते हैं कि इम ही (ज्ञान का) दान करने वाले हैं और इम ही वहें हैं। (यों तो) जिसे समझाओ वही समझना है और बिना समझे संसार में रहना जीन है। (फिरन्तु) सत्तगुरु के मिलने से ही अंधकार ने बचा जा सकता है और (उसकी वतलाई हुई) इन्हीं रीतियों से ज्ञान का माणिक प्राप्त होता है। दादने और बाएँ विकारों को छोड़ कर (यहाँ वहाँ की याती में न उलझ कर) सीधे हरि के चरणों में दृढ़ता-पूर्वक रहना चाहिए। कवीर कहता है कि जब गूँगा गुड़ खा लेता है तो पूछने पर वह क्या कह सकता है! (इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान का अनुग्रह करने वाला क्या वतलाएं कि उसकी अनुभूति क्या है!)

२७

शरीर के नष्ट होने पर, जहाँ जो कुछ पा वहाँ अब कुछ नहीं है—पाँच तत्व भी वहाँ नहीं रह गए। ऐ बंदे, मैं पूछता हूँ कि इठा, पिंगला और सुपुष्णा ये (नाड़ियाँ) आवागमन में कहाँ चली जाती हैं? तागा (सौस) टूटने पर आकाश (ब्रह्म-रंभ) नष्ट हो जाता है। फिर यह तेरी बोलने की शक्ति कहाँ समा जाती है? यही संदेह मुझे प्रतिदिन कष्ट देता है और मुझे कोई समझा कर नहीं कहता। (इस माया में) जहाँ न तो ब्रह्मांड है, न पिंड और निर्माणकर्ता भी नहीं है। (समस्त सृष्टि को) जोड़ने वाला तो सदा अतीत है। फिर यह अनीत कहो किसमें रहता है। बिनाश होने के पूर्व तक न तो (तेरे) जोड़ने से कुछ जुड़ेगा और न (तेरे) तोड़ने से कुछ टूट ही

नौ गज और दस गज बाने के लिए और इफीन गज बाने के लिए मानना चाहिए।) उस पुरिया के फैलाव में माड यह रक्तो गए और उसमें नव संट ढालकर राघु के द्वारा बहतर भाग छिप गए। इन प्रकार इस करधे पर बहुत बच लगा। यह बस्त बिनवाने के लिए (मी) चली। लेकिन जुलाई पर छोड़कर जा रहा है। (उसका कारण यह है कि) न तो कपड़ा करवे के बेलन पर लिपटता है और न वह मोर—(लकड़ी की कमनियों के सदारे) आदि से टीक तरह सधा ही रहता है क्योंकि अधिक मौड़ लग जाने से ढाई सेर कपड़ा पाँच मेर द्वे गया है। (यदि बुनने की मुविधा के लिए मौड़ कम लगाया जाय और) ढाई सेर को पाँच सेर न किया जाय तो यह भगदालू स्त्री भगदा करने लगता है। (यह भगदा इसलिए करती है कि यदि गेगा कपड़ा अधिक भारी होगा—वास्तव में हो ढाई सेर ही लेकिन यदि यह पाँच सेर के बजन का हो जाय तो पैसे अधिक मिलेंगे लेकिन बेचारे जुलाई की मुसीबत यह है कि यदि यह कपड़ा भारी करने के लिए मौड़ अधिक लगता है तो या तो कपड़ा करवे में नहीं लिपटता या कोशिश करने पर भी खिचाव में झोल आ जाता है। सूत का फैलाव तुला नहीं रहता।; फिर कहीं दिन को भी बैठकर बुना जाता है। दिन का बाज़ार (वैठ या पैठ) है जहाँ अच्छे अच्छे स्त्रीद करने वाले मालिक आते हैं उनसे ही वरकत होती है। यह कोई वक्त है कपड़े बुनने का। इस समय यहाँ क्यों कपड़ा बुनवाने के लिए आई है? (प्रातःकाल कपड़े बुनने का अच्छा समय होता है।) फिर पास रखा हुआ पानी का यह कुँडा भी फूटगया जिससे सारी पुरिया भीग गई। इसीलिए जुलाई को गुस्सा आ गया। फिर बाने को बुननेवाली जो ढरकी (Shuttle Cock) है वह भी उत्तराव हो गई है। या तो उससे तागा ही नहीं निकलता या यदि निकलता है तो उलझकर रह जाता है। (फिर जुलाई को झुँभलाहट क्यों न हो?) कबीर कहता है कि ऐ

पगली ! (वेचारी) तू यह सारा पसारा छोड़कर जीवन विता ।

३०

एक (आत्मा की ज्योति उस (एक परब्रह्म की) ज्योति से मिल गई)। अब और कुछ हो अथवा न हो। जिस घट (शरीर) में राम-नाम की उत्पत्ति नहीं होती वह घट फूट कर नष्ट हो जाय तो अच्छा है। ऐ सुन्दर संवले राम, मेरा तुझमें अनुरक्त ही गया है। साधु मिलने से ही रिंद्रि हीती है इसमें चाहे योग हो या भोग हो। इन दोनों के संयोग से ही राम-नाम से संयोग हो सकता है। लोग समझते हैं कि (जो कुछ मैं कह रहा हूँ) यह एक साधारण गीत है, किंतु वस्तुतः यह ब्रह्म-विषयक विचार है जो काशी में मनुष्य को मरते समय दिया जाता है। गाने वाला और सुनने वाला चाहे जो कोई हो, लेकिन तू हरि के नाम से चित्त लगा। और ऐसा करने से—कवीर कहता है कि—परम गति की प्राप्ति में कोई संदेह नहीं रह जाता।

३१

जिन्होंने (अपने बचने का) यह किया, वे सब हूँव गए। इस प्रकार भव-सागर को बेलोग पार नहीं कर सके। कर्म, धर्म और अनेक संयम करते हुए अहंकार की बुद्धि ने उनका मन जला दिया। जो सौंस और भोजन का देने वाला स्वामी है उसे तूने मन से क्यों भुला दिया? तेरा जन्म हीरा और लाल (जैसे अलभ्य रक्तों) की भाँति अमूल्य है, उसे तूने कौड़ी (साधारण ममता और सोह) के बदले दे रखा है! तुम्हे गृणा, तृप्ता भूख और भ्रम कष्ट देते हैं किंतु इन कष्टों का विचार तू हृदय में नहीं करता। तेरे मन में केवल मंतवाला मान ही रह गया, तूने गुरु के शब्दों को कभी हृदय में धारण नहीं किया। स्वाद से आकर्षित होकर इंद्रियों ने तुम्हे रस की ओर प्रेरित कर दिया और तू विकार से भरे हृष्ण योग्यन का रस लेता फिरता है। कर्मकांड से तू (वुं) संतों के दंग में केवल लोह और काष्ठ की माला (और साधुओं

के आभूपण श्रादि ही) हृदय में धारण करता है। अनेक गोनि और जन्मों में भ्रमित होकर भागते हुए हम गण और दुःख महन करते हुए भी अब हम शिथिल हो गए। कवीर कहता है कि अब तो गुरु के मिलने से ही महारम (ब्रह्मानन्द) मिलेगा और प्रेम-भक्ति के सारे इस (भव-नागर) से निस्तार होगा।

४२

कच्चे भगव की तरह यह पागल मन ऐसी हस्तिनि है जिसने अपनी गति में ईश्वर की रनना कर दाली है। (अथवा ऐ पागल मन ! कच्चे भराव की तरह यह शरीर की हस्तिनि ऐसी है जिसने अपनी बुद्धि के विकास में स्वयं ईश्वर की सृष्टि कर दाली है) और काम-वासना के द्वायी उगके वश में इस प्रकार आ गए हैं कि अंकुशों वी मार सिर पर महन करते हैं (लेकिन हृष्टते नहीं !) ऐ पागल मन, तू विषय-न्वासनाओं से यच और समझ कर हरि से प्रेम कर। निर्भरहोकर हरि का भजन न करने से राम लूपी जहाज पकड़ में नहीं आता। ऐ पागल मन, तूने हाथ पकार कर (विषय-न्वासनाओं को) उसी प्रकार मुट्ठी में पकड़ लिया है जिस प्रकार बदर (सकरे मुँह के घरतन में से) अनाज मुट्ठी में भर कर निकालना चाहता है। लेकिन छूटने में कठिनाई होने से (वह पकड़ा जाता है और) पर घर के दरवाजे नाचता किरता है। ऐ पागल मन, माया का व्यवहार तो जैसे (सेमर की) नलनी है जो (देखने में अत्यंत आकर्षक है किंतु भीतर रुई भरी रहने के कारण रस-हीन है) सुर्यो को आकर्षित कर लेती है। और उस माया का विस्तार उसी प्रकार है जैसे कुसुंभी रंग का जो पानी पड़ते ही फैलता जाता है। ऐ पागल मन, तूने स्नान करने के लिए अनेक तीर्थ बनाए और पूजने के लिए बहुत से देवताओं को बनाया। लेकिन कवीर कहता है कि हे पागल मन, इनसे तू संसार से मुक्त नहीं हो सकता। तुम्हें मुक्ति तो हरि को सेवा से ही मिल सकती है।

३३

(राम-नाम का धन इम प्रकार हे कि) न तो उने अग्नि जलाती है, न वायु अपने में लीन करता है और न चाँच उसके समीप आ सकता है। इसलिए राम-नाम के धन को संनित करना चाहिए, क्योंकि वह धन कहीं नहीं जा सकता। हमारा धन तो माधव, गोविंद और धरणीधर है। इसी को वास्तव में धन कहना चाहिए। जो सुख गोविंद प्रभु की सेवा में मिलता है, वह सुख राज्य (करने) में भी नहीं प्राप्त हो सकता। इस धन के लिए शिव सनक आदि लोजते-सोजते बीतरागी हांगए! यदि मुकुंद की मन मान लिया जाय और नारायण को जिहा, तो यम का वंधन किसी प्रकार भी (गले में) नहीं पड़ सकता। मेरे गुरु ने ज्ञान और भक्ति का धन मुझे दिया इस कारण उनकी बुद्धि में ही मेरा मन लग गया। जो मन स्वयं तो (विषय-वासनाओं में) जल रहा है किंतु (ईश्वर-ज्ञान रूपी) जल-थंभन के लिए दौड़ रहा है। (अर्थात् विषय-वासनाओं में जलते हुए भी ईश्वर की अनुभूति रूपी शीतल जल को आने से रोक रहा है) उसका भ्रम-वंधन का भय भाग गया। (अर्थात् वह संसार में ही लीन हो गया।) कवीर कहता है कि ऐ कामदेव के मद से उन्मत्त (मनुष्य), तू अपने हृदय में विचार कर देख। तेरे घर में लाखों और करोड़ों धोड़े और हाथी हैं। (तुझे इतना सुख नहीं है जितना मुझे है क्योंकि) मेरे घर में केवल एक सुरारी ही है।

३४

जिस प्रकार वंदर है जो हाथ की मुट्ठी चनों से भर लेता है और लोभ से नहीं छोड़ सकता, उसी प्रकार यह मनुष्य है। वह लालच से तरह तरह के काम करता फिरता है और उन्हीं के अनुसार बार बार वंधन में पड़ता है। इस प्रकार भक्ति के बिना उसका जीवन व्यर्थ ही

गया। साधु-चंगनि और भगवत्-भजन विना उसके जिए कही भी मुख्य नहीं रह सका। जिस प्रकार उद्यान ने फूल फूलते हैं और उनकी मुर्गांपि कोई नहीं लेता। (काल उन्हें नष्ट कर देता है।) उसी प्रकार जीव अनेक योनियों में भ्रमण करता है और काल वार वार उन्हें नष्ट करता है। यह धन, योवन, पुत्र और ली केवल दृश्य-मात्र के नप में मनुष्य को दिये गए हैं। उन्हीं में यह मनुष्य अटक कर उलझ गया है, वह इंद्रियों ने प्रेरित जो हो गया है। जीवन की श्रवणि ही श्रगि है, और यह शरीर जिमका चारों ओर ने शृंगार किया गया है एक तिनके का मदल है (जो पल भर में जल जायगा।) कवीर कहता है कि भव-सागर पार करने के लिए मैंने मतगुरु की शरण ली है।

३५

मैले पानी और उज्ज्वल मिट्ठी ने इस शरीर की प्रतिमा बनाई गई है। न मैं कुछ हूँ और न कोई चीज़ ही मेरी है। यह शरीर, यह संपत्ति और यह समस्त आनंद है गोविंद, तेरा ही है। इस मिट्ठी में पवन का समावेश किया और गोविंद ने यह माया-प्रपञ्च चलाया है। कुछ लोगों ने असंख्य धन का संचय किया है किन्तु अंत में उनकी भी कपाल-क्रिया मिट्ठी के घड़े फोड़ने की भाँति की गई। कवीर कहता है कि अंत में ओसारे में (मकान से हटकर) [खुदें हुए गढ़े (नींव) में उसका अत होता है] और वह अहंकारी क्षण भर में नष्ट हो जाता है।

३६

ऐ जीव, राम को इस भाँति जपो जिस भाँति भ्रुव और प्रहाद ने हरि का जाप किया था। हे दीनदयालु, मैंने एकमात्र तेरे भरोसे अपने समस्त परिवार को जहाज़ पर चढ़ा लिया है। (अब इस भव-सागर से तू ही पार लगा।) तू जिससे चाहे उससे अपनी आज्ञा मनवा किंतु इस जहाज़ को तू पार लगा दे। गुरु के प्रसाद से मेरे हृदय में ऐसी बुद्धि

समा गई है कि मैं आवागमन से रहित हो गया हूँ। कवीर कहता है कि एक सारंगपाणि (राम) का ही तू भजन कर। भव-सागर के इस पार और उस पार सभी जगह वही एक दानी है।

३७

(पिछली) योनि को छोड़कर जब मैं इस जग में आया तो इस संसार की हवा लगते ही मैं अपने स्वामी को भूल गया। अतः हे जीव, तू हर के गुण गा। (यह आश्चर्य तो देख कि) तू गर्भ-योनि में ऊपर (मुख किए हुए) तप करता था। फिर भी जटराग्नि से तू सुरक्षित रहा। तू चौरीमी लक्ष योनियों में धूम कर आया है। (अब तू ऐसा भजन कर कि) इस योनि से छूट कर तुम्हें किसी और जगह न जाना पड़े। कवीर कहता है कि तू सारंगपाणि (राम) का भजन कर जो न आते हुए दीखता है और न जाते हुए ज्ञात होता है। (अर्थात् जो सदैव स्थिर और चिरंतन है।)

३८

न तो स्वर्ग-निवास की अभिलाप्या करना चाहिए, न नर्क-निवास ने दरना चाहिए, जो कुछ होना ढूंगा, वह तो हांगा ही मन में आशा ही नयी की जाय? (केवल) गम का गुण गाना चाहिए जिससे परम-पद की प्राप्ति हो। जब क्या है? तप क्या है? संयम क्या है? व्रत श्रीर स्नान क्या है? जब तक कि भगवान के भक्ति-भाव की युक्ति न जानी जाय! न तो संपर्नि देखकर प्रसन्न होना चाहिए और न विपत्ति देख कर रोना चाहिए। जैसी संपर्नि है, वैसी ही विपत्ति है। और हांग वटी जो देश्य द्वाग निर्दिष्ट है। कवीर कहता है कि अब मुझे जान दी गया कि यह (वह संतों के हृदय के भीतर है। वस्तुतः सेवक यहाँ है और मैं उसी की अच्छी है जिसके हृदय में मुरारि (वहा) निराम करने हैं।

३६

रे मन, तेरा कोई नहीं है, तू व्यर्थ ही (ओरों का) भार मत खीच।
 यह संसार तो वैसा ही है जैसा पक्षी का वृक्ष-यसेरा। मैंने तो राम-रस
 पी लिया है जिससे संसार की विपद्य-वासना के, अब्द्य रस भूल गए हैं।
 दूसरों के मरने पर रोने से क्या लाभ ? जब स्यं अपनी स्थिरता नहीं
 है। जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह अवश्य नष्ट होगी। इसलिये (मैं
 क्यों रोऊँ ?) मेरी यलाव दुखों होकर रोय ! जहाँ जैसी सुष्ठि है ब्रह्म ने
 वैसी ही (अवस्था के अनुकूल) उसकी रचना की है। किन्तु लोग
 उसका (अनुचित रूप से) रस पीने में लगे हुए हैं। कवीर कहता है
 कि हे वैरागी, तू अपने चित्त में जागृति लाकर राम का स्मरण कर
 (अथवा कवीर कहता कि हे चित, तू चैतन्य होकर वीतराग से राम का
 स्मरण कर।)

४०

कामिनी आँखों में आँख भर कर और लम्बी सौस लेकर (अपने
 स्वामी का) मार्ग देख रही है। न तो (अधिक अश्रुओं से) उसका हृदय
 भीगता है। (इस डर में कि अधिक अश्रुओं से नेत्र-ज्योति धूमिल न
 पड़ जावे) और न अपने स्थान से उसका पैर हटता है, (न कहीं जाती
 है, इस डर से कि न जाने कब उसके स्वामी उसे दर्शन देने चले
 आवें) उसे तो एकमात्र अपने (स्वामी) हरि के दर्शन पाने की
 आशा है। ए काले काग, तू क्यों नहीं उड़ जाता ? जिससे मुझे अपने
 प्यारे राम शीघ्र ही मिल जावें ? कवीर कहता है कि जीवन के मोक्ष
 के लिये हरि की भक्ति करनी चाहिये। एक नारायण के नाम का आधार
 ही लिया जाय और जिहा से राम में ही रमण किया जाय (या जिहा से
 राम-नाम ही उच्चारण किया जाय।

४१

आस-पास तुलसी के घने वृक्ष हैं। बीच में बनारस गाँव है।

इसका सौंदर्य देख कर (परमात्मा रूपी) ग्वालिनि मोहित हो गई है । (कवीर कहते हैं कि ऐ ग्वालिनि, तू यहीं निवास कर) मुझे छोड़ कर कहीं भी आना-जाना छोड़ दे । हे (प्रभु) सारंगधर, मेरा मन तुम्हारे ही चरणों में लग गया है । तुम तो उसी को मिलते हीं जो परम सौभाग्यशाली है । यों तो समस्त वृद्धावन के मन को हरने वाले कृष्ण गोपाल गायें चराते हुए (ईश्वर माने जाते हैं) किन्तु ऐ सारंगधर, तुम जिसके स्वामी हों, वह मैं हूँ और मेरा नाम कवीर है ।

४२

कितनों ही ने वहुत से वस्त्र पहिन रखे हैं और कितनों ही ने बन में वास कर लिया है किंतु ऐ मनुष्य, ईश्वर से धोखा करने में तुम्हें क्या मिला ? जल में अपना शरीर डुबाने से तुम्हें क्या लाभ हुआ ? ऐ जीव, मैं जानता हूँ कि तू नष्ट होगा । अरे मूर्ख, अविगत (ब्रह्म) को समझ ! मैंने जहाँ जहाँ देखा फिर वहाँ दूसरी बार दृष्टि भी नहीं की क्योंकि (सभी) माया के साथ लिपटे हुए हैं । जानी, स्थानी तो वहुत उपदेश करने वाले हैं और यह सारा संसार एक प्रपञ्च ही है । कवीर कहता है कि एक राम-नाम के बिना यह संसार माया से अंधा हो रहा है ।

४३

रे मन, तू अपना भ्रम छोड़ दे और निस्संकोच होकर प्रकट रूप से कार्य कर । (समझ ले कि) तू इस माया से दंडित किया गया हैं । क्या शरवीर कभी सम्मुख संग्राम से घरता है ? या सती छों क्या कभी (भंडार) संपत्ति का संचय करती है ? रे पागल मन, तू अपनी अस्थिरता छोड़ दे । जर्व तूने अपने द्वाय में (सत्य-व्रत) का सिंधीरा ले रखा है तब अपने को जला कर उमात कर देने में ही तुम्हे सिद्धि मिलेगी । संगार काम, क्षोय और माया से ग्रसित होकर इसी प्रकार असमंजस या अद्वचन में पड़ा हुआ है । इसलिए कवीर कहता है कि उच्चातिउच्च

क्षमा का भै वर्षा नहीं होता ।

४५

जिस जागरण के लिया गया है। जो जगत् में जहा जितना वहाँ तो वहाँ भी है, वहाँ वर्षा है और वहाँ के लिए जिस रुप होता है। ऐसी जिस वर्षा की देवता वर्षाकारी हो ही है। इसी वर्षा की वर्षा ही ज्ञान है। इस ज्ञान की वर्षा वार्षा है। जिस ज्ञान ही ज्ञान है। इस वर्षा परिणाम यह ही है कि जाग भी खुल जायेगी ही जागना। और उसका रहना है कि जो वर्षा पर वा वर्षा है। वर्षा जागे, जागे जिलायो ।

४६

जीरकी जाय जीवो ही योनियो में भ्रमण करते हुए नेंद (कृष्ण) निवारे बहुत धड़ गया। उस देवते दा बहुत यहा भाग या कि (उमरि पर यो) भक्तो के लिए न्यगतार लिया गया। यम जो (शूल जो) नेंद दा पुत्र करने ही चाहे (मैं यक्षना हूँ कि) नेंद कियदा पुत्र या? जब एक्षी, आदाय और रखी दियाहैं जही भी तो यह नेंद करी गया है दस्तः 'निरञ्जन' तो उसी का नाम है जिस पर न तो संकट पाते ही और न जो योनियो में भ्रमण करता है। कर्यों का स्वामी तो ऐसा देवता है जिसके न माता है और न पिता ।

४७

ऐ लंगो, मेरी निदा करो, मेरी निदा करो। निदा तो भक्त को बहुत प्यारी है। उसके लिए ना निदा ही पिता है और निदा ही माता। यदि निदा होती है तो (समझ लो कि) विकुण्ठ जाना (निश्चयत) है और नाम के तत्त्व जो मन में रखा देना भी (निश्चयत) है। यदि निदा होती है तो छद्य शुद्ध ही जाता है। (दूसरे शब्दों में) दमारे (भेले) कपड़े (मानो) निदक ही भोता है। जो निदा करता है वह दमारा मित्र है। और उसी निदक में हमारा चित्त (निवास करता)

है। भिक्षा मही है जो भिक्षा मात्री के मात्र, ही हमारा कर दें। तभी तो निर्देश इमाम शीतल नम्र खगाता है। मन उपरी है निर्देशी (एकमात्र निक्षा ही मार ल्य है)। निर्देश (जो भी भिक्षा की दूष जागा है और वह पार उत्तर गये)।

गमु आत्मा

१

श्रावण के चतुर्थी का दर्शन नहीं है निर्देश करता है और दूसरा हूँ कि भैने वह प्राणी नदी पाये हैं। यह जान माया में क्यों उत्तर और नष्ट होता है? कुपा कर मुझे रामभट्टा कर दर्हिए। ऐ देव, दया दर्हो मुझे सन्नाये पर लगाइए। जलसे भय का वंधन दृढ़ जाय और (मैं) अन्त-मरण के दृश्य से, फिर कर्म के (मिथ्या) तुल्य में और डीव की दीनियों से छूट जाऊँ। नेरा मन माया-पाश के वंधन को नष्ट नहीं करता और शून्य को पाने की चेष्टा नहीं करता। अपने आत्म-पद निर्वाण को नहीं पहिचानता और इस प्रकार ढीठ होने से नहीं चूकता। उससे जो कुछ भी कहा जाता है, वह प्रतिक्लिंत नहीं होता और यदि प्रतिक्लिंत होता भी है तो वह उसको जानता नहीं है, इस प्रकार भाव और अभाव दोनों से रहित है। उदय (उत्पल होने) और अस्त (नष्ट होने) की बुद्धि मन से नष्ट हो गई है फिर भी वह (मन) सदैव अपनी स्वाभाविक (कल्पित) मनोवृत्तियों में लीन रहता है। (आपकी कृपा से) जब प्रतिविवर (जीवात्मा) विवर (परमात्मा) में मिल जायगा और वह जल से भरा हुआ घड़ा (शरीर) नष्ट होगा तब, कवीर कहता है, (तुम्हारे) ऐसे गुण से भ्रम भाग जायगा और तभी मन शून्य में लीन हो जायगा।

२

(बनारस के संतों का वर्णन करते हुए कवीर कहते हैं—) साड़े

तीन-तीन ग़ज़ की धोती पढ़ने हुए, पैरों में तिहरे तारे लपेटे हुए, गले में जपमाला डाले हुए और हाथ में लोटे लिए हुए इन कम्युद्धतों को हरि के संत नहीं कहना चाहिए। ये लोग तो वनारस के ठग हैं। मुझे ऐसे संत अच्छे नहीं लगते जो दोकरे भर-भर के पेड़ा गटक जाते हैं। वर्तन माँज कर ऊपर खाना खाते हैं (कि कहीं किसी की भोजन पर छाया न पड़ जाय) और लकड़ी धो कर जनाते हैं। पृथ्वी को खोद कर दो चूल्हे बनाते हैं और फिर सब आदमी मिल कर खाते हैं। वे पापी (अपराध करके) अपराधी बने हुए सदा (यहाँ से वहाँ) धूमते रहते हैं और मुख से ही वे एक दूसरे को अछूत कहते हैं। (अर्थात् किसी का मुख ही देखकर वे छूत मान लेते हैं और स्नान करते हैं।) इस प्रकार वे अभिमानी हमेशा फिरते रहते हैं और अपने सारे कुटुम्ब को (अपने साथ ही पाप में) डुबाते हैं। वे जहाँ से (द्रव्य आदि) लाते हैं, वह (उसी प्रकार से वहीं या वैसे ही कामों में) नष्ट हो जाता है और वे उसी के अनुसार कर्म भी करते फिरते हैं। कवीर कहता है, (वनारस के इन संतों को छोड़कर) जो सतगुर से भेंट करता है वह फिर जन्म लेने के लिए (संसार में) नहीं आता।

३

मेरे पिता ने मुझे आश्वासन दिया। मुझे सुखदायक सेज दी और मुख में अमृत (के समान भोजन) दिया। उस पिता को मैं अपने मन से कैसे भुला दूँ। मैं न (इस मर्यादा के) आगे जाऊँगा और न अपनी बाज़ी हाऱूँगा। (न जीवन में असफल होऊँगा।) मेरी माता मर गई किंतु मैं किर भी सुखी हूँ। मैं दगली (मोटे वस्त्र की अँगरखी) भी नहीं पहनता किर भी मुझे पाला (ठंड) नहीं लगता। (अर्थात् पिता के दुलार ने माँ के अभाव की पूर्ति कर दी है।) मैं उसे पिता की बलि जाता हूँ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ। उन्होंने पंच (इंद्रियों) से मेरा साथ छुड़ा दिया है। अब मैंने पंच (इंद्रियों के विष) को मार कर पैरों के नाचे

दया दिगा है और एविन्द्रमण ही में देख गम और मन भीग रहा है ! एमारा पिता बहुत याता जोगाई (प्रतीन या विशेषिक) है । मैं (मार्गी) उस पिता के पास कथीकर (किम प्राप्त) आऊँ । कहि मुझे मत्तुनुग मिल जायें तो वे भैरा पर्याप्तर्थीन फर देंगे निशेह लागे जब अगत-पिता भैर मन को शान्त्ये लागने लगे हैं । (ऐ पिता) मैं तुम्हारा दुर हूँ और तुम भैर पिता हो । एक ही स्थान पर दस दोनों निवास फरते हैं । किंतु सेवक कथीर ने तो दोनों को (अपने को और निता को) एक ही समझ रखा है न्यौकि गुरु के प्रसाद से मुक्ते सब कुछ दीक्षा तरह में दीखने लगा है ।

४

(यह माया का वर्णन है ।) एक पाव या पचल भर नाने के टुकड़े (उरकट-कुरकट) और एक पाव भर पानी है । उसे खाने के लिए चारी और से पंच जोगी बैठे हैं और बीच में एक नकटी रानी है । (तात्पर्य यह कि केवल एक शरीर है और उसका उपभोग करने के लिए पाँच इंद्रिय हैं और बीच में माया है ।) वाह (हूँ) इस नकटी का नीझ़ा बहुत बढ़ गया है ! किसी विवेकी (ज्ञानवान) को तो तूने नहीं काटा । इस नकटी (मर्यादा-न्हीन) माया का निवास सभी स्थानों में है और इसने सभी का शिकार (श्रेष्ठ) कर मार डाला है । यह (माया) सब संसार की बहन और भांजी बन कर बैठी है (जिसके सभी लोग पैर पड़ते हैं ।) किंतु जिन लोगों ने इसे बरण करके स्त्री बना लिया है उनकी यह दासी हो गई है । हमारा स्वामी (गुरु) बहुत विवेक-पूर्ण है और स्वयं संत-रूप से प्रसिद्ध है । वही हमारे माथे पर स्थित है । (अर्थात् रक्षक है ।) हमारे निकट (उसे छोड़ कर) और कोई नहीं आ सकता । (मेरे गुरु ने उस माया की) नाक काट ली । कान काट लिए और उसे नष्ट-भ्रष्ट करके टाल दिया है । कवीर कहता है, यह तीनों लोकों की प्रियतमा (माया) संतों की परम शत्रु है ।

५

योगी, यती, तपस्या करने वाले और संन्यासी अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हैं। वे लुंजित (लुंचित—जिनके शरीर के केश उखाड़ लिए गए हैं।) अथवा मजित (मूँज की मेखला पहने हुए हैं।) या मौन होकर जटा रखाए हुए हैं किन्तु (इतना सब होते हुए भी) अंत में उन्हें मरना पड़ता है। इसलिए (केवल) राम की सेवा करनी चाहिए। जिसकी जिहा में राम-नाम का प्रेम है उसका यम क्या कर सकता है? जो लोग शास्त्र, वेद, ज्योतिष और अधिक से अधिक व्याकरण जानते हैं, और जो लोग तंत्र, मंत्र और सभी औषधियाँ पहिचानते हैं, उन्हें भी अंत में मरना पड़ता है। जिन लोगों की राज्य का उपभोग प्राप्त है; छत्र, सिंहासन और अनेक सुन्दर स्त्रियों का संग सुलभ है और पान, कपूर और सुगंधित चंदन उपलब्ध है, उन्हें भी अंत में मरना प्रड़ता है। मैंने वेद, पुराण और सभी स्मृतियाँ खोज डालीं, किसी के द्वारा भी उद्धार नहीं हो सकता इसलिए कवीर कहता है, केवल इस राम का जाप करो जिससे तुम अपना जन्म और मरण मिटा सको।

६

हाथी रवाव बजाता है, बैल पखावज और कौआ ताल (या करताल) बजाता है। गधा लंवा बच्च पहन कर नाचता है और भैंसा भक्ति करता है। राजा राम ने ककड़ी के बड़े पकाये हैं। किन्हीं (वास्तव में) समझने वाले ने उन्हें खाए हैं। सिंह घर में बैठ कर पान लगा रहा है, धीस (बड़ा चूहा) उन पानों की गिलोरियाँ ला रहा है। चूहे का बच्चा घर घर में मंगल गा रहा है और कछुआ शंख बजा रहा है। यह सब उत्सव इसलिए हो रहा है कि उच्च कुलोद्भव पुत्र (जीवात्मा) विवाह करने के लिए चला आ रहा है और उसके लिए सुनोने का संडप (शरीर) छाया गया है। बेदी पर परम सुन्दर कन्या

(माया) है जिसका गुण खरगोश और सिंह गा रहे हैं। कवीर कहता है कि ऐ संतो, सुनो (यह आश्चर्य की बात है कि) कीड़े ने पर्वत खा लिया है और कछुआ कहता है कि (इस विवाह में) अंगार भी चंचल हो रहा है और उलूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है। [टिप्पणी—जीवों का यह रूपक कवीर के रूपक-रहस्य की विशेषता है। जीवात्मा और माया का विवाह होने पर हंद्रियों उत्सव मनाने लगती है। हाथी, बैल, कौथा, गधा और भैंसा ये कर्मेन्द्रियों के रूप में हैं और सिंह, घूस, चूहा, कछुआ और शशक ये ज्ञानेन्द्रियों के रूप में हैं। यहाँ जिस क्रिया-कलाप का वर्णन है; वह विवाह से संबंध रखता है। 'कीड़े ने पर्वत खा लिया' का तात्पर्य है—देह ने आत्मा को 'निगल लिया, 'अंगार भी चंचल हो गया' का तात्पर्य है—आध्यात्मिक अनुराग संसार के विषयों की ओर आकृष्ट हो गया और 'उलूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है' का तात्पर्य है—अज्ञता धार्मिक स्वींग भर रही है। 'ककड़ी के बड़े' का तात्पर्य है—सच्चा ज्ञान। अंतिम पंक्ति का पाठ होना चाहिए: 'कछुआ कहै अंगार भि लोर उलूकी सबदु सुनाइया']

७

बट्टवा तौ एक (शरीर) है जिसमें वहत्तर (नाड़ियों की) आधारियाँ (लकड़ी की टेबकी जिसका सहारा लेकर साधु जन बैठते हैं।) और जिसका एक ही (ब्रह्म-रंभ) द्वार (या मुँह) है। ऐसे बट्टवे के साथ जो नौ खंड की पृथ्वी (समस्त पृथ्वी) माँग लेता (अधिकार कर लेता) है, वही सारे संसार में (सच्चा, योगी है। ऐसा योगी नवों निधि प्राप्त करता है जो नीचे (मूलाधार चक्र) का ब्रह्म ऊपर (सहस्रदल) में ले जाता है। ऐसा योगी ध्यान ही को सुई बनाकर, उसमें शब्द का तागा भौंज कर ढालता है और ज्ञान रूपी खिंये (वच्छ) को सीता है। वह पंच तत्त्व का तिलक करता है और गुरु के दिखलाए हुए मार्ग पर चलता

है। वह दया की फावड़ी (से ज्ञानीन साफ कर) काया की धूनी (यनाता है) और उसमें अपनी (ज्ञान) दृष्टि की आग ललाता है। उस (व्रज) का भाव हृदय के भीतर लेकर चारों युगों का त्राटक लगाता है। इस शरीर में जिसने प्राण दिए हैं उस राम का नाम ही सब योग की सामग्री है। कवीर कहता है, जो उस राम की कृपा धारण करता है वही सच्चा निशाना लगा सकता है। (सच्चा योग कर सकता है।)

८

हिंदू और मुसलमान ये (अलग अलग) कहाँ से आए? औ किसने यह (धर्म) पथ चलाया? ऐ मूर्ख, अपने हृदय में विचार कर कि वहिंश्त और दोज़म्म किसने पाई? ऐ क़ाज़ी, तूने किस कुरान का उपदेश दिया है? तूने पढ़ते-गुनते हुए सब लोगों को (भुलावा दे दे कर) इस प्रकार नष्ट किया कि किसी को अपने (विनाश का) पता ही नहीं चल पाया। यदि तू शक्ति से स्नेह कर (अर्थात् हिंसा-पूर्वक) सुन्नत करता है तो मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगा। यदि खुदा मुझे मुसलमान बनायेगा तो मेरी सुन्नत आपसे आप हो जायगी। और यदि सुन्नत करने से ही काँई मुसलमान हीता है तो छी का क्या करेगा? (उसकी सुन्नति तो हो ही नहीं सकता।) अर्धांगिनी छी तो छोड़ी भी नहीं जा सकती, इसलिए हिंदू ही रहना उचित है। (ऐ क़ाज़ी) तू कुरान का पढ़ना छोड़। अरे पागल, तू राम का भजन कर। तू बहुत अत्याचार कर रहा है। कवीर ने तो राम की टेक ही पकड़ी है। मुसलमान लोग (समझा कर) यक-पच गए।

९

मालिनी (पूजा के लिए फूल) पत्ती तोड़ती है, किंतु (यह नहीं जानती) कि पत्ती-पत्ती में जीवात्मा है। प्रत्युत जिस पत्थर (की मूर्ति) के लिए वह पत्ती तोड़ती है वही पत्थर (की मूर्ति) निर्जीव है। मालिनी यह भूल गई है कि सतगुरु देव जानता है (जो उसे उसका दोषदिखला

सकता है।) पर्ची में ब्रह्मा है, डालं में विष्णु है और फूज में शंकर देवता है। जब यह (मालिनी) प्रत्यंक्षं रूप से इन तीनों देवताओं को तोड़ती है तो सेवा किसकी करती है? (मूर्तिकार ने) पत्थर को गढ़ कर मूर्ति बनाई। उसकी छाती पर पैर रखकर (उसका निर्माण किया) यदि यह मूर्ति सत्य है तो पहले (उसे) मूर्ति गढ़ने वाले को खाना चाहिए। भात, दाल, लपसी और रवेदार पंजीरी तो भोग लगाने वाले ने उड़ा डाली, इस मूर्ति के मुँह में केवल धूल ही पड़ी। (इस मूर्ति का फिट्टे मुँह!) कवीर कहता है कि मालिनी भूल गई और उसके साथ सारा संसार भुलावे में पड़ गया केवल मैं नहीं भूला! मेरे श्वामी राम और हरि ने कृपा कर मेरी रक्षा कर ली।

१०

(मेरी आशु के) बारह वर्ष वात्यावस्था ही में कट गए। वीस वर्ष तक किसी प्रकार का तप नहीं किया। तीस वर्ष तक किसी देवता की पूजा नहीं की फिर वृद्ध होने पर केवल पछताना ही (हाथ) रह गया। 'मेरी-मेरी' करते ही सारा जन्म व्यतीत हो गया। इस (शरीर रूपी) सागर का शोपण करके (काल) सर्प वलवान हो गया। तू सूखे हुए सरोवर (शरीर) की मैड़ वाँध रहा है, काटे हुए खेत की रक्षा कर रहा है। चौर (काल) आया और तुरंत ही (चौरी करके) ले गया और तू 'मेरी' कहता हुआ मूर्ख बना घूसता है। तेरे चरणं, शीश, हाथ काँपने लगे और तेरे नेत्रों की पुतलियों से व्यर्थ ही आँसू बहते रहते हैं, तेरी जिहा से शुद्ध वचन भी नहीं निकलते तब तू धर्म कर्म की आशा करता है? जब हरि जी कृपा करें तभी 'हरि' का नाम लेकर लाभपूर्वक उनमें लौ लगाई जा सकती है। मैंने गुरु के प्रसाद से ही यह हरि (रूपी) धन पाया है। अंत में नाड़ी चली जाने पर (शरीर के निधन पर विना कष्ट के) हम यहाँ से चल सकते हैं। कवीर कहता है, रे संतों, अन्न, धन (अथवा धन-वन) यहाँ से कुछ भी नहीं

ले जा बढ़ते । इय मात्रालराम (ईश्वर) का बुलाया आता है तब इय माया के मंदिर (शरीर) को छोड़कर चले जाना ही पड़ता है ।

११

(ईश्वर ने) किसी को तो रेशमी घञ्ज दिए, किसी को नियार ने उने हुए पलेंग । किसी को नासियल और प्याज़ उक नहीं थी और किसी को खाने के लिए वैला दिया । इमनिष्ट हे गम, भीजन के संदेश में विवाद गत करो, केवल उत्कर्म ही करते रहो । कुम्हार (ईश्वर) ने एक ही मिट्टी गूँध कर उसमें अनेक प्रकार की कांति उत्पन्न की । किसी ने मोती और गुक्कादल बुग्जित किए और किसी में गोग भर दिए । कंजूस को तो धन सुरक्षित करने के लिए दिया है, वह मूर्ख कहता है कि यह धन गेरा है । जब यम का ढंद उसके मिरलगता है तो पल भर में निर्णय हो जाता है (कि वास्तव में धन किसका है) । ईश्वर का सच्चा मक्क यही कहलाता है जो (उसको) आज्ञा (मानने) में सुख पाता है । उसे जो अन्धा लगता है वह सत्य रूप से मानता है और अपना मन शरीर में नहीं लगाता । कवीर कहता है, दे संतो मुनो इस संसार में 'मेरी' 'मेरी' (की माया) भूटी है । कम्हे की पेटी की खंबीर छूटने पर (काल) चीथड़े या गुदड़ी को फाड़ कर उसमें से चमकीला प्रकाशवान रल (आत्मा) ले भागता है ।

१२

ऐ काजी, तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बनता । हम तो दीन, वेचारे ईश्वर के सेवक हैं और तुम्हारे मन में राजसी याते भाती हैं । (किंतु इतना समझ लो कि) सर्वप्रथम ईश्वर, धर्म के स्वामी ने कभी अत्याचार करने की आज्ञा नहीं दो । तरोज्ञा रखता है, और नमाज गुजारता (पढ़ता) है किंतु यह समझ ले कि कलमा (जो वाक्य मुसल-मान धर्म का मूल मंत्र है—ला हंला इल्लिलाह मुहम्मद उर्रसूलिल्लाह) पढ़ने से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती । जो (साधना) कर सकता है वह

१६

जिस रावण ने (अपनी रक्षा के लिए) लंका जैसा क्रिला बनाया जिसके चारों ओर समुद्र की खाई-न्सी बनी थी, उस रावण के घर की स्थिति भी आज किसी को नहीं है। इसलिए (ईश्वर से) क्या माँगते हों कुछ भी तो स्थिर रहने वाला नहीं है। आईयों देखते वह सारा संसार चला जा रहा है। जिस रावण के एक लाख पुत्र और सवा लाख नाती थे, उस रावण के घर में आज दिया-नक्ती भी नहीं है। चंद्र और सूर्य जिसका भोजन पकाते थे और अग्नि जिसके कपड़े धोता था (वह रावण कहाँ है?) गुरु की आज्ञा से (हृदय में) राम-नाम ही को स्थान दो जो इस प्रकार स्थिर रहता है कि वह कभी नहीं जाता (उसका कभी विनाश नहीं होता।) कवीर कहता है, रे लोगों मुनो, राम-नाम के विना मुक्ति नहीं होती।

१७

पहले पुत्र हुआ पीछे माता उत्पन्न हुई और गुरु अपने शिष्य के चरण स्पर्श करता है। हे भाई, तुम यह आश्चर्य सुनो कि तुम्हारे देखते हुए गाय सिंह को चरा रही है। जल में रहने वाली मछली पेड़ पर जाकर जनती है और आईयों के सामने कुत्ते को विल्ली ले जाती है। एक पेड़ है जो नीचे तो वैठा हुआ है अथवा जिसके नीचे तो पत्ते हैं और ऊपर जड़ है, ऐसा पेड़ फून-फलों से परिपूर्ण है। घोड़ा चरता है और भैंस उसे चराने ले जाती है, वैल तो बाहर ही खड़ा रहता है और गांनि घर के भीतर (अपने आप) चली आती है। कवीर कहता है, जो इस पद को समझता है, वह राम में रमण करता है और उसे संसार का सारा रहस्य सूझ पड़ता है। [टिप्पणी—यह कवीर की एक उल्टवाँसी है और इसके सारे रूपकों में कार्य-व्यापार की परिस्थिति ए ठी बतलाई गई है। आत्मात्मिक पञ्च में इस रूपक में आए हुए नामों का निम्नलिखित अर्थ लेने से अर्थ-संगति स्पष्ट हो जाती है:—

[पुष्प—बीव । माता—माया । गुद—शब्द । चेला—बीयात्मा ।
 सिंह—ज्ञान । गग—चाली । मद्दनी—फुटनिनी । तद्यत—मेहरठट ।
 कुचा—अशार्नी । विन्स्टी—माया । पेट—गुपुम्पा नारी । फलकूल—
 चक और सहस्रदल कमल । घोड़ा—मन । भैंस—तामसी गुत्तियाँ ।
 बैल—पंच प्राण । गांनि—न्यूल्प की गिरि ।]

१५

जिस माता ने गुरुके विद्वु ने पिठ का अप दिया और उद्गम्याला
 से (वचा कर, सुगच्छि करके) अपने पेट में दम भास रखा (उम
 माता के कप्टों पर ध्यान न देते हुए) त माया के वर्णाभूत फिर ही
 गया । रे प्राणी, (संसार मुखों के) नाधारण लोभ के लिए त् अपना
 रक्तरुपी जन्म क्यों न्हो रहा है ? (ज्ञात होता है कि) पूर्वजन्म की कर्म-
 भूमि में तूने बीज नहीं बोया । वाल्यावस्था से त् वृद्धावस्था को प्राप्त
 हुआ । जो होना था सो तो हुआ किंतु जब यमराज आकर तेरे केश
 पकड़ता है तो त् क्यों रोता है ? जब त् जीवन की आशा करता है
 तब यमराज तेरी सौंसों (की गिनती करता हुआ तुझ) को देखता है ।
 कवीर कहता है, यह संसार एक इंद्रजाल है । त् अब भी सँभल कर
 अपने (कमों का पासा फेंक ।

१६

तन और मन को वार वार सुगंधित पराग-कणों में परिवर्तित कर
 मैं पाँचों तत्वों को वराती वनाऊँगी और राजा राम के साथ भाविर
 (विवाह कर) लूँगी क्योंकि मेरी आत्मा उन्हीं के रंग में रँगी हुई है । हे
 सौभाग्यशालिनी नारियों, मंगलगांत गाओंकि मेरे घर स्वामी राजा-
 राम आए हैं । जिस राम के नाभि-कमल से उत्पन्न होकर (ब्रह्मा ने, वेदों
 की रचना की और (संसार में ज्ञान का विस्तार किया, उसी राम को
 मैंने पति रूप में पाया है, मेरा इतना बड़ा भार्य है ! इस अवसर पर
 कितने ही देवता, मनुष्य और मुनिजन आए हैं । मैं तो ज्ञानती हूँ कि

उनकी संख्या तेतीसों करोड़ है। (उन्हीं के सामने) मुझे एकेश्वर भगवान् विवाह कर ले चले हैं—ऐसा कवीर कहता है।

रागु सोरठि

१

मूर्ति की पूजा करते-करते हिंदू मर गए और सिर झुका-झुका कर (नमाज़ पढ़ते हुए मुसलमान मर गए। वे हिंदू किसी के मरने पर उसे जला देते हैं और वे (मुसलमान) गाड़ देते हैं किंतु दोनों ने ही (ऐ मन) तेरे रहस्य को नहीं समझा। ऐ मन, यह संसार बहुत बड़ा अंधा है (जो यह नहीं देखता कि) चारों दिशाओं में मृत्यु का बंधन फैला हुआ है। कवि लोग सुंदर कपड़ों से सजे हुए सभा-भवनों में कवित पढ़ते हुए मर गए और जटा रख-रख कर योगी मर गये किर भी (ऐ मन) ये लोग मुझे नहीं पहचान सके (तुझ पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।) द्रव्य संचित करते हुए रांजा मर गए जिन्होंने हुर्गों पर विजय प्राप्त कर बहुत-सा स्वर्ण एकत्रित किया। वेद पढ़-पढ़ कर पंहित मर गए और रूप देख-देख कर नारी भी मर गई। अपने शरीर की ओर देख कर यह समझ लो कि राम-नाम के बिना सभी लोग छुले गए हैं। कवीर यह उपदेश करके कहता है, हरि के नाम के बिना किसने गति पाई है ?

२

इस शरीर का गौरव यही है कि जब जलता है तो भस्म हो जाता है, पड़ा रहता है तो इसे कीट-कुमि खा डालते हैं। कच्चे घड़े भर पानी पड़ता है, (तब उसके नष्ट होने के समान ही यह शरीर है।) अयोध्या, फूले-फूले किर रहे हो ? जब दस महीने अँधे मुख रहे थे, वह दिन कैसे भूल गए ? जिस प्रकार मधु मक्खी रस एकत्रित करती है उसी भौति तुमने जोड़-जोड़ कर धन एकत्रित किया है। मरते समय लोग उसी धन को 'ले लो' ले लो उसे कह कर ले लेते हैं (और तुझे बाहर-

(विश्वास देखे हैं ।) भूत की पर ही शीघ्र रहने देता है । पर ही देखती
जग में एक निर्मित विश्वास की रहती है । इसे जाने का के
मुख्य लोक अद्वितीय रहते हैं । इश्वरान् गव छवि वृद्धि के दौरा
रहते हैं, इसी अपने विश्वास रहते हैं जाता है । इसी बताता है,
प्राची, युवा । ये जग में एक एक जाता कूर्म के विश्वास है । यही शुद्ध
जाता के जारी यात्रा की देख ही यह विश्वा है । यह प्रश्न विश्वा की
सर्विंग वृद्धि के लक्ष्य में देखा । यह विश्वास है । कि इस विश्वा का ।
में व्यक्ति रसायन देता दिक्षित है एवं उसके नीचे यात्रा है, ऐसी
उत्तमता ही इस विश्वास पर्याप्त है ।)

येद पूराण आदि गमी पार्विक संघों के विद्वान् तुन त्रै दर्शे दर्शे
को आगा को (कि उसमें तीरा निस्तार होता) किंव विष गमय काल ने
लोगों को ज्ञाना शुद्ध किया तो वे चक्र (प्राण निराश होकर शुद्ध के
पास चले) रे गए, इस (दर्श) से एक भी पार्व गमय नहीं हो सकता।
यदि तूने रमेशनि राजा का गमयन नहीं किया। नार्दी (जो अग्राहत नाद
में विश्वाय रमते हैं), येटी (जो येदों के मानने वाले हैं) शुबर्दी (जो
शब्द-व्रत के उपायक है) और गोनी (जो जीवन पर्यंत गोन-ज्ञत धारण
करते हैं) गापुश्री ने बनखंड में जाकर योग और तप किया और तुन
कर गात्किक कंद और मूल का आहार किया किन्तु उनसे भी यमराज
का पटा ही लियाया गया (अर्थात् वे भी यम के अधिकार-पत्र से
शामित हुए।) जिनके दृदय में नारदी भक्ति नहीं आई और जिन्दोंने
अपने शरीर को भक्ति के आठंवरों से बहुत अच्छा तरह सजाया और
राग एवं रागनी अलापते हुये आठम्बरी रूप रखता, उन्दोंने दूरि से
क्या प्राप्त किया ! उमस्त खेलार के ऊपर काल की छाया पन्नी है और
उसमें जानोजन भ्रम से चित्रवत् लिखे हुए हैं। कवीर कहता है, वे दी
कुछ संघफ गालसे (शुद्ध) हो रहे जिन्दोंने प्रेम और भक्ति को

वास्तविक रूप से समझा है।

रागु तिलंग

१

हे भाई, वेद और कुरान ये भूठे हैं, इनसे हृदय की चिता नहीं जाती। यदि एक क्षण भर के लिए हृदय में थोड़ी स्थिरता ले आओ तो सर्व स्वामी ईश्वर तुम्हारे सामने ही उपस्थित जात होगा। ऐ बन्दे, तू अपने हृदय में प्रतिदिन खोज और व्यर्थ की व्याकुलता में मत फिर। यह जो संसार है वह एक नगर-मेले की तरह है जिसमें विपत्ति के समय हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं है। तू भूठ-मूठ पढ़-पढ़ कर प्रसन्न होता है और निश्चन्त होकर ईश्वर के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर बाद-विवाद बकता फिरता है। (सत्य तो यह है कि) सर्वश्रेष्ठ ईश्वर ही सच्चा है। वह सृष्टिकर्ता सृष्टि के बीच में ही है किंतु वह श्याम मूर्ति के रूप में नहीं। आकाश के बीच में जो आकश-गंगा है उसी में उसने स्नान किया था। उसी का संदेव चिंतन कर और अपनी अंतर्दृष्टि से देख कि वह यत्र-तत्र-सर्वत्र विद्यमान है। अत्तलाह (व्रह्ण) ही पूर्ण पवित्र है। उस पर संदेह तो तब किया जाय जब वह एक से भिन्न (दूसरा) हो। कवीर कहता है, वह कृपालु ही जिस पर कृपा करे, वही उसे जान सकता है।

रागु सूही

२

शासनाधिकार समाप्त हो गया, अब सारा लेखा देना होगा। उसे लेने के लिए यम के निर्दय दूत आ पहुँचे। तुमने क्या सुरक्षित किया है और क्या खो दिया है, शीघ्र ही चलो, दीवान (धर्मराज) ने बुलाया है। दीवान के बुलाने से इसी समय चलो क्योंकि ईश्वर के दरवार का आज्ञा-पत्र आया है। निवेदन के साथ जो कुछ भेट देना

है दो और यदि कुछ कहना शेष है तो उसे गा दो ।" आज की रात भर है जो कुछ सुलभाना है उसे सुलभा लो । जो कुछ भी तुम्हारा खर्च हुआ है, उसकी पूर्ण रक्षा कर लो । प्रातःकाल की नमाज़ सराय में जाकर गुज्जारना, अदा करना । साधु-संगति से जिसे हरि का रंग लग गया है, वह भाग्यशाली पुरुष घन्य है । ईत (साधारण जन) और ऊत (निस्संतान) बड़े सुखी और सुंदर हैं जिन्होंने (सब भक्तों से रहित होकर) जन्म का अनमोल फल प्राप्त किया है । अन्यथा संसारी मनुष्य ने) जागते-सोते अपना जीवन खो दिया है और संपत्ति जोड़ कर वे दूसरों (अपनी स्त्री और बच्चों) के वश में हो गए हैं । कवीर कहता है, ऐसे ही मनुष्य भूले हुए हैं क्योंकि— वे अपने स्वामी को भूल कर मिट्टी (सुंदर स्त्री और धन आदि) में उलझ गए हैं ।

३

(देखते देखते) नेत्र थक गए, सुनते सुनते कान थक गए और (कार्य करते हुए) सुंदर शरीर थक गया । वृद्धावस्था की हुँकार से सब बुद्धि थक गई केवल एक माया ही नहीं थकी । रे पागल, तू ज्ञान का विचार नहीं कर पाया । तूने व्यर्थ ही जन्म गँवा दिया । प्राणी तब तक (सुख के) सरोवर की तृष्णा करता रहता है जब तक कि उसके शरीर में साँस रहती है । यदि वह हरि के चरणों में निवास करने के लिए अपना शरीर भी ले जाता है तो उसके साथ भक्ति-भाव नहीं जाता । जिसके हृदय के भीतर 'शब्द' निवास कर लेता है, उसकी (सांसारिक वासनाओं के प्रति) प्यास जाती रहती है । वह (ईश्वर का) आदेश समझ कर जीवन की चौपड़ खेलता है और मन लगा कर अपने (भावों का) पाँसा डालता है । जो भक्त अविगत (ईश्वर) को जान कर उसका भजन करते हैं, उनका किसी प्रकार भी नाश नहीं होता । कवीर कहता है, वे सेवक कभी नहीं हारते जो पाँसा डालना जानते हैं ।

४

एक दुर्ग (शरीर) है, उसके पाँच विश्वमनीष और बलनान रहक (पंच प्राण) हैं। वे पाँचों बुझने के क्षियत तज्ज्ञ करते हैं। मैंने भिमी की ज्ञानीन तो जोती-योई नहीं है। ऐसी स्थिति में) कैक्षियत देना दुःखप्रद मालूम होता है। ऐसे दूरि भक्तों, भुक्ते इस दुर्ग के पठनारी गन) की नीति उसती या दुःख देनी है। जब मैंने भुजा उटा दर गुरु को रक्षा के लिए पुकारा तब उन्होंने गेथा उद्धार कर लिया। उस दुर्ग में नीं तो दंड देने वाले जमादार (नव दार) हैं और दम दोनोंने वाले मुसिफ (दस इंद्रियाँ) हैं। वे किसी (भक्ति-भाव का) प्रजा का निनाय करने नहीं देते। वे (बुद्धि की) पूरी डोरी नापते भी नहीं हैं और बहुत वेगार लेते हैं। वहत्तर कोठे वाले घर (शरीर) में एक पुरुष (अहंकार) समाया हुआ है, उसी ने मेरा नाम (वेगार में) लिखा दिया है। जब धर्मराज का चिट्ठा देखा गया तो मेरे ऊपर न पावना या न देना। अतः संतों की कोई निंदा न करे क्योंकि संत और राम एक ही हैं। कवीर कहता है, मैंने वह गुरु पा लिया है जिसका नाम विवेक है।

रागु गौड

१

संत के मिलने पर उससे कुछ सुनना-कहना चाहिए। यदि असंत मिले तो चुप हो रहना चाहिए। बाया, उनसे क्या बोलना और क्या कहना! चुप होकर जैसे राम नाम में ही लीन हो जाना चाहिए। संतों से बोलने में तो उपकार होता है किंतु मर्ख से बोलना मानो भर्ख मारना है। बोलते बोलते ही तो बुराई बढ़ती है। न बोलने से वह वेचारा क्या कर सकता है! कवीर कहता है, खाली घड़ा ही आवाज़ करता है; जो भरा होता है उसका पानी हिलता भी नहीं है (और वह शब्द भी नहीं करता)।

२

मनुष्य मर कर मनुष्य के भी काम नहीं आता । पशु मर कर दस काम सँवारता है । फिर मैं अपने कर्मों की क्या गति समझूँ ! हे बाबा, मैं क्या समझूँ ! हड्डियाँ इस तरह जल जाती हैं जैसे काठ और केश इस तरह जल जाते हैं जैसे घास का पूला । कवीर कहता है, मनुष्य तो (अपनी मोह-निद्रा से) तभी जागेगा जब यमका दंड उसके सिर पर लगेगा ।

३

आकाश में गगन है, पाताल में भी गगन है, चारों दिशाओं में गगन रहता है । वहीं आनंद-मूल चिरंतन पुरुषोत्तम है । इसलिए शरीर के विनष्ट होने पर गगन विनष्ट नहीं होता । यही देख कर मुझे वैराग्य हो गया । यही जीवात्मा यहीं आकर कहाँ चला जाता है । (पुरुषोत्तम ने) पंच तत्वों को मिला कर शरीर का निर्माण किया, इसमें जीवात्मा जो तत्त्व है उसका निर्माण किस वस्तु से किया ? तुम जीव को कर्मवद्ध कहते हो तो कर्म को किसने जीवन प्रदान किया ? हरि मैं ही पिंड है और पिंड ही मैं हरि है वही हरि सर्वमय और निरंतर है । कवीर कहता है, मैं राम-नाम को नहींछोड़ूँगा । जो कुछ स्वाभाविक रीति से हो रहा है, उसे होने दो ।

४

[कहा जाता है कि सिंहदर लोदी ने कवीर को दंड देने के लिए उन्हें बाँध कर हाथी के सामने फेंक दिया था । किंतु हाथी चिंधाड़ मार कर दूर भाग गया था । उसी अवसर का यह पद ज्ञात होता है ।] मेरी भुजाएँ बाँध कर, मुझे पिंड बनाकर (हाथी के सामने) डाल दिया किंतु हाथी ने क्रद्ध होकर अपना सिर पृथ्वी पर दे मारा । फिर भाग कर चीत्कार करने लगा । मैं प्रभु के रूप की बलिहारी जाता हूँ । तू मेरा स्वामी है और यह तेरी ही शक्ति है (कि हाथी चीत्कार करता